

आचाराङ्ग के सूक्त

अनुवादक

श्रीचन्द्र रामपुरिया, बी० ए०, बी० एल०



तेरपंच द्विजानन्दी समाजोद्देशक अभिनन्दन में प्रकाशित

प्रकाशन

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

३, पोचमीज चच स्ट्रीट

वल्कता



प्रथमावृत्ति

जून, १९६०

घापाड २०१७



प्रति सख्या

१५००



पृष्ठ सख्या

३२०



मूल्य

तीन रुपये



मुद्रक

ओमवाल प्रेम

वल्कता—७

प्रकाशकीय

आचाराह का प्रथम श्रुतस्कथ भाग, ताया और
शैली की दृष्टि से अज्ञात में प्राचीनतम माना गया है।
इस पुस्तक में इस श्रुतस्कथ के सूत्रों का चाँदा है और साथ
ही में उसका हिन्दी अनुवाद। आगम साहित्य-शास्त्र का
यह प्रथम पुष्प है जिसे महासभा द्विंशताब्दी समारोह के
अभिनन्दन में प्रकाशित कर रही है। ये सूक्त महानीर की
मौलिक वाणी का मार्मिक गन्धर्व वादका को देगा।

मेरापय द्विंशताब्दी व्यवस्था उपलब्धि

३ पोरुगीज चच स्ट्रीट,

कन्नडा—१

२६ जून १९६०

श्रीचन्द्र रामपुरिया

व्यवस्थापक,

साहित्य विभाग

भूमिका

१ आचारानुसूची का स्थान

अन आचारानुसूची का नाम गणितपिटक रखा । गणितपिटक में आचारानुसूची की गणना होती है । उन आचारानुसूची का स्थान प्रथम है ।

आचारानुसूची में विगता कथा स्थान है यह कथान के विग श्रुत पुण्य की कल्पना मिलती है जिसमें 'आचारानुसूची' का दाहिने चरण और 'श्रुतकथांग का बाय चरण के रूप में निरूपित किया है । गरीर में

१—समवायानुसूची १३६ इमे दुप्राश्रमो गणितपिटके पन्तते,
त जहा आचारे दिट्टिवाए

२—(क) नदीमूत्र ४३ की चूर्ण पत्र ४७

पादयुग जपोर गानदुगद्ध तु दोय वाह य ।

मीवा सिर च पुरितो वारसजगोनुनविसिद्धा ॥

(ख) समवायानुसूची १३६ की टीका • तत्र श्रुतपरम
पुण्यस्य अनुसूचीवाङ्मानी आचारानुसूचीनि
यस्मिस्तद् द्वादशाङ्गम

पैरा का स्थान अनय है। भावाराङ्ग और सूत्रवृत्तांग में श्रुत पुण्य के दा पर हैं प्रयात सारा श्रुत इन्हीं के आधार पर तडा है। उनके जिना अथ अङ्ग पंगु हैं। यह कल्याण भी भावाराङ्ग के महत्व का प्रदर्शन करती है।

नियुक्ति के अनुसार तीथ-प्रयत्न के समय तीथकर सब प्रथम भावाराङ्ग का उपदेग करते हैं और उनके बाद अथ अङ्गा का^१। गणधर इस उपदेग से प्रथम भावाराङ्ग का सूत्रबद्ध करते हैं और फिर अथ अङ्गो को। दूसरे मत के अनुसार तीथकर गण प्रथम पूर्वों का उपदेग देने हैं पर सूत्र ग्रन्थन सर्व प्रथम भावाराङ्ग का ही होता है^२। तीमने मत के अनुसार सब प्रथम उपदेग और सूत्र रचना

१—(क) आ० नि० ८

सञ्चेसि आयारो तित्यस्स पवत्तणे पढमयाण ।

मेसाइ अगाइ एकारस आणुपुञ्जीए ॥

(ख) आ० चू० पत्र ३

सञ्च तित्यगरा वि आयारस्स अन्थ पडमआइक्वत्ति ततो मेसगाण
एणसग्मण्ह अगाण ताए चेत्रपरिवारिए गणहरावि सुत्तं गुथनि

२—नदी चूणि पत्र ५६ नदी टीका पत्र १०७, नदी वृत्ति

पूर्व की हकी है पर स्थाना सर्व प्रथम भाषारान्त की हकी है ।
इसमें दा मत नहीं कि भाषारान्त को किसी-न-किसी द्धि से सद्नों
में प्रमुख स्थान प्राप्त है ।

विदुषिभार ने भाषारान्त की कविता उक्त 'सद्नों में प्रथम,
'प्रथम का सार' कह कर की है और कहा है कि इसमें मात्र का
उपय बतवाया गया है । साथ ही उसे 'विद' 'प्रथम' का सम्बन्धित
किया है ।

भागों में भुगतान का अर्थ निम्न है—(१) सद्नसिद्धि
और (२) सद्नसिद्धि ।

१—समवायान्त सूत्र १३६ की टीका

२—आ० नि० ६०

भाषारो भाग पदम वा दुसागमि ।

अथ य मौनगोवाओ एम य सारो पवयगमसा ॥

३—आ० नि० ११

अथमनेरपदो अट्टारसापमगमिओ वेतो ।

४—नदीसूत्र सू० ४४० त नालयओ दुविह पयनी, त जहा
अपयसिद्धि अपयसिद्धि च

गणधरा के प्रश्न करने पर तीथकर उत्पाद-व्यय धौन्य रूप त्रिपत्नी का उपदान करने हैं। उन पर से उत्पन्न श्रुत को अगप्रविष्ट कहते हैं। बिना प्रश्न अथ प्रतिपादन के लिए उपदिष्ट श्रुत अङ्ग-वाह्य कहलाता है। अङ्गवाह्य और अगप्रविष्ट की दूसरी परिभाषा इस प्रकार है—सब तीथकरों के तीथ में अवश्य उत्पन्न होने वाला अथात् नियत श्रुत अगप्रविष्ट और अनियत श्रुत—किन्नी तीथकर के तीथ में होने वाला और किन्नी के तीथ में नहीं होने वाला अगवाह्य कहलाता है^१। आचाराङ्ग अगप्रविष्ट श्रुत की वाटि में आता है^२।

२ श्रुतस्वधों की अपेक्षाएँ प्राचीनता

आचारांग का श्रुतस्वध में विभक्त है। पहले श्रुतस्वध में नौ अध्ययन रहे। अब आठ हैं^३। दूसरे स्वध में पांच चला रही। अब

१—विशेषावश्यकभाष्य वृद्धवृत्ति पत्र २८८

२—नदीसूत्र सू० ४/ से कि त अगप्रविष्ट अगप्रविष्ट द्वायलसविष्ट पण्णत्त तत्रहा—आयारो १ दिट्ठिवाओ १२

३—नियुक्तिवार भद्रजहु के समय तक नौ अध्ययन रहे। शौणकाचार्य 'महापरिज्ञा' नामक अध्ययन को लुप्त बताते हैं। नियुक्ति के मन से यह अध्ययन ७ वाँ था। दूसरे मन के अनुसार ८ वा, और समवायाङ्ग सू० ६ के मन से ६ वाँ।

चार हैं^१ ।

दुमरे श्रुतम्बध में कुल १६ अक्षयन हैं । इन अक्षयन में न प्रत्येक का 'आचारप्र' कहा गया है । आचाराद्य का समूह हान में दुमरे श्रुतम्बध का नाम 'आचाराप्र' मितना है ।

प्रथम श्रुतम्बध के नौ अक्षयनों में न अक्षय का नाम अक्षयवर्ष है । अक्षयवर्ष अक्षयना का समूह हान में प्रथम श्रुतम्बध का नाम अक्षयवर्ष मितना है ।

प्राचीन जलेश्वरों में पता चला है कि मूल आचाराद्य प्रथम श्रुतम्बध प्रमाण था । 'द्वितीय श्रुतम्बध बाद में उगमे जुग^२ । नियुक्तिवार कहते हैं—' यद—आचार—वक्षयनामर नौ अक्षयनारम' है त्रिषुभ अक्षरह इवार पद ह । यह बाद में पंच जुग

१—नियुक्तिवार मद्राहु के समय पाचनी चूना रही । उसके बाद गुम हो गई । इस चूना के दो नाम मिलने हैं— (१) निगीय और (२) । आचार प्रवरप (आ० नि० २६७ टीका)

२—आ० नि० १२

आचारगाण्थो वमचेरेसु सो समोयरड ।

सोडवि य सत्यपरिष्णाए पिडिअन्थो समोयरड ।

सहित हुआ जिनमें पञ्चपरिमाण में वह 'बहु' और 'बहुतर' हुआ^१ ।
 'बहु' और 'बहुतर' शब्द पर टीका करते हुए गीनाङ्क लिखते हैं
 "चार चूर्णिकात्मक श्रुतस्वरूप के प्रक्षेप से उमका परिमाण बहु और
 पाँचवीं चूर्णा निगीष के प्रथम ने उमका परिमाण बहुतर हुआ^२ ।"
 नियुक्तिवार प्रथम लिखते हैं "गम्भ्र-परिणा आदि नो अध्ययन
 है उतना ही आचार (भङ्ग) है । गेष आचाराद्य है^३ । जो वाने

१—आ० नि० ११

णमरमचेरमडओ अट्टारसपयसहस्तिओ वेओ ।

हवइ य सपचनूओ बट्टमहुतरओ पयग्गेण ॥

२—आ० नि० ११ की टीका

तत्र अध्ययनो नवब्रह्मचर्याभिवानाध्ययनान्मनोऽय
 पदोऽप्यादक्षमहस्वात्मसो विद' आचार एतिसपञ्चचृद्धच
 भवति चनुश्चूर्णिकात्मक द्वितीय श्रुतस्वरूपप्रक्षेपाद्बहु,
 निगीषात्पय पञ्चमचूर्णिकाप्रक्षेपाद्बहुतर पदाप्रेण—
 पदपरिमाणेन भवति

३— आ० नि० ३१ ३२

सन्धररिणा^१ लोमविजओ^२ सीओसणिज्ज^३ सम्मत्त^४ ।

तह लोममारनाम^१ धुय^२ तह महापरिणा^३ य ॥

अट्टमए य विमोक्को^४ उवहाणमुच्च च नवमण भणिय ।

इच्छेसो आद्यारो आचारगणणि येसणि ॥

आचार में बहनी छूट गयी प्रथवा जितना विस्तार करना जरूरी था उनका ममावेग इस 'अग्र' भाग में है, अतः वह आचारान्न है^१। नियुक्तिवार ने इस विषय पर पुनः प्रकाश डालते हुए लिखा है "आचार (भङ्ग) प्रथम श्रुतस्वध के नौ अध्ययन जितना ही है। दूसरे श्रुतस्वध के अध्ययन तो गिण्या के हित के लिए, अर्ध का अधिक विस्तार करने के लिए पान वृद्ध स्वविरा ने पहले श्रुतस्वध आचार के अध्ययनो से प्रवि-
मत्त विधे हैं^२।' टीकाकार ने यह दिनाया है कि प्रथम श्रुतस्वध के नौ अध्ययन के विम भाग या वाक्य पर से दूसरे श्रुतस्वध के अध्ययन का विस्तार किया गया है। किस घूला का विषय

१—आ० टीका पत्र २८६

उपकारान्न तु यत्पूर्वोक्तस्य विस्तरतोऽनुक्तस्य च प्रति-
पादनादुपकारे वर्तते तद्—यथा दशवर्कालिकम्य चूडे,
अयमेव वा श्रुतस्वन्व आचारस्य ।

२—आ० नि० २८७ ।

धेरेहिऽणुमहृदा सीसहिम होउ पागडन्ध च ।

आपाराओ अत्यो आचारगेमु पविमत्तो ॥

टीका—स्वविरं श्रुतवृद्धं

यहाँ से लिया गया है इसका विस्तार नियुक्ति में भी है^१ । आचाराङ्ग जूणि और टीका में प्रथम श्रुतस्वध के अन्तिम वाक्य का अन्तिम मङ्गल माना है^२ । इसमें भी यह सिद्ध होता है कि मूल आचारांग नौ अध्यायन में परिमित रहा ।

जेशाही ने लिखा है "प्रथम श्रुतस्वध आचारांग का प्राचीनतम भाग है मभवत्त यही मूल प्राचीन आचारांग सूत्र है जिसके साथ अन्य कृतियाँ बाद में जोड़ी गई^३ । टिप्पणियाँ निम्नलिखित हैं—

१—आ० नि० २८८ २६१

२—आ० टी० पत्र १ प्रत्यूहोपशमनाय भगवत्प्रभिक्षेय तच्चादिमध्यावसान भेदास्त्रिधा, तत्रादिमङ्गलसुय मे आउमतेण भगवया एवमक्लाय', मध्यमङ्गल लोकसाराध्ययन पञ्चमोद्देशकसूत्र सि जहा केवि सारक्समाणे', अवसानमङ्गल नवमाध्ययनेश्वमानसूत्रम् 'अभिनिव्वुडे अमाई आववहाए भगव समियासी ।'

3 S B E (Vol XXII, Introduction p XLVII) The first book, then, is the oldest part of the Akaranga Sutra, it is probably the old Akaranga Sutra itself to which other treatises have been added

है "साधारण का द्वितीय श्रुतम्बध बहुत बाद का है। यह केवल इनमें मात्र में जाना जा सकता है कि दूसरे श्रुतम्बध के अध्येतों का 'चूना' कहा गया है। चूना अर्थात् परिमिष्ट' ।'

द्वितीय श्रुतम्बध प्रथम श्रुतम्बध की अज्ञानता बाद का है परन्तु फिर भी यह बहुत प्राचीन है और नियुक्ति-कार भद्रबाहु के समय में यह साधारण में समाविष्ट था इसमें कोई सन्देह नहीं।

३. प्रतिपाद्य विषय

प्रथम चूना में ७ अध्येतन हैं—त्रिनमें भ्रमण विन्यता, दम्बा-व्रमति, ह्यो विहार, भाषा, वर्मपणा पार्श्वपणा, अथग्रह प्रतिमा के नियम हैं। इस चूना का नाम नहीं मिलता। दूसरी चूना में भी ७ अध्येतन हैं। त्रिनमें भ्रमण स्थान निषीदिका उद्यान प्रत्यक्षण, दम्ब, रूप परत्रिया, अयान्यत्रिया विषयक नियम हैं। इस चूना का नाम गतिप्रया है। तीसरी चूना में एक ही अध्येतन है। इसमें भगवान महावीर का जीवन चरित्र तथा पान महाव्रत और उनकी २५ भावनामा का हृदयग्राही वर्णन है। यह

1 A History of Indian literature (Vol II, p 437) Section II of the Ayaranga is a much later work, as can be seen by the mere fact of the sub divisions being described as Culas, i e appendices

साधन निग्रह । प्रथम श्रुतस्वर्ण म मुनियुक्त के सम नियमा का उन्नेय नहीं है पर वहाँ व्यापक धर्म भावना और जीवन-व्यापि समग्र समय के मूत्र है । इन अध्ययन में गम्भीर कर्त्तव्यजन एवं साधक मुनि की साधना के मौनित मूत्र है ।

प्रथम श्रुतस्वर्ण के अध्ययनो का विषय संश्लेष में इन प्रकार है

१—सम्कारिता इनमें जीवा के प्रति समय का उपदेश है । उन धर्म में छ प्रकार के जीव माने गये हैं । इन जीवा की हिया के परिहार का उपदेश इन अध्ययन म है ।

२—नाकविजय इन अध्ययन में भावनों व विजय की बात साई है । त्रिनमे साक—वम—का बन्ध होता है उन कथायादि पर विजय का उपदेश इन अध्ययन में है ।

३—शीतोष्णीय इनमें सुख-दुःख में त्रिनिष्ठा भाव रखन का उपदेश है ।

४—गम्यवत्त्व इनमें मन्थ म दृढ धडा रखने का उपदेश है ।

५—नाकगार इनमें लोक मे मार कथा है इसका ध्यान है । इन अध्ययन का नाम प्रायति^१ भी मिलता है ।

६—पुन इनमें निर्मलता का उपदेश है ।

आचाराङ्ग के सूक्त

७—महापरिना^१ इसमें मोहजन्य परिपह उपमर्ग को महन करने का उपदेश है। यह अध्ययन विच्छिन्न है। इसके विषय का प्रतिपादन नियुक्तिवार ने इस वाक्य से किया है— मोह समुत्था परीसहवसम्मा ।

८—विमोह^२ इसमें निर्वाण—प्रतन्त्रिया—की विधि है।

९—उपधानश्रुत इसमें भगवान महावीर के दीप्ता के बाद के बारह वष व्यापी दीध तपस्वी जीवन का वर्णन है।

उपरोक्त नौ अध्ययनों के विषय की चर्चा करने वाली नियुक्ति की गायार्हे इस प्रकार हैं—

अधमजमो^१ अ लोपो जह वज्जइ जह य त पजहियव^२ ।

मुद्दुक्कवित्तिक्खाविद्य^३ समत्त^४ लागमारो^५ य ॥ ३३ ॥

निम्सगया^६ य छट्ठे मोहममुत्था परीसहवसम्मा^७ ।

निग्जाण^८ अट्टमए नवमे य जिणेण एवति^९ ॥ ३४ ॥

४ उपनिषद् और आचाराङ्ग

प्रो० दत्तमुख मानवगिया लिखते हैं

‘वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में स्तुतियाँ भी भरमार हैं पर आध्यात्मिक चिन्तन बहुत कम मिलता है। उपनिषदों में आध्यात्मिक

१—इसके क्रम के विषय में देखिए भूमिका पृ० ४ पा० टी० ३

२—इसका नाम ‘विमोह’ (विमोहायण) भी मिलता है।

सम० सू० ६

चिन्तन उदात्त अर्थ में होता है परन्तु उन्में यह कहा गया है कि धारण चिन्ता-मनन एवं माधना का मार्ग क्या है ? माधना व धारण की इनके जीवनपर्याय संज्ञा ज्ञानी चार्डि मा र्क कहिए साधक केने धन, धन क्षेत्र, संशु साधक धन निरु तथा विपु प्रचार तन मन मोर धनन की प्रवृत्ति का प्राध्यात्मिक माधना की धार माने, इसका कोई उदाहरण नहीं बताया गया है ।

‘इस तरह उपनिषद् में ब्रह्मवादा का है वह ब्रह्मपर्यय का धन नहीं मगता । चिन्तन मनन करने का उद्देश्य तो दिया गया है पर उन्में निरु साधक व प्रेरण में निरु साधक की योग्यता, मूल निरुप्रवृत्त होने की चार्डि तथा चिन्तना मध्यम हुना चार्डि, उन्का मध्य विधि विधान प्राचीन उपनिषद् में परिष्कृत नही हुआ । न मध्यम का विधि विधान है, न उदाहरण का ही ।

‘यदि प्राध्यात्मिक चिन्ता-मनन एवं संयती जीवन का मार्ग स्थापित करना हो तो हमारे समय समकाल परम्परा का यह प्राचीन सर्वोत्कृष्ट काव्य साधारण मूल है’ ।’

१ जैन-साहित्य का इतिहास आचाराङ्ग मूल (‘साधक’ वर्ष ६ अङ्क १ पृ० ८)

७—महापरिना^१ इसमें मोहजय परिपह-उप^२ करने का उपदेश है। यह अध्ययन विच्छिन्न है। का प्रतिपादन निपुत्तिकार ने इस वाक्य से किया है—^३ परीसहृवसम्मा ।

८—विमोह^४ इसमें निर्वाण—अन्तर्निया—वी ।^५

९—उपधानश्रुत इसमें भगवान् महावीर के दी के बारह वय व्यापी दीर्घ तपस्वी जीवन का वर्णन है ।

उपरोक्त नौ अध्ययना के विषय की चर्चा करने वाली वी गाथाएँ इस प्रकार हैं—

जिम्मजमो^६ अ लोमो जह वज्जइ जह य त पगहियव्व^७ ।

सुहदुक्खतितिम्भावि^८ समत्त^९ लोममारो^{१०} य ॥

निस्सगया^{११} य छट्ठे माहसमुत्था परीसहृवसम्मा^{१२} ।

निज्जाण^{१३} भट्टमए नवमे य जिणेण एवति^{१४} ॥

४ उपनिषद् और आचाराङ्ग

प्र० दनमुल मानवणिषा लिखते हैं

‘वेद और ब्राह्मण ग्रन्था में स्तुतियाकी भरमार है, पर ऋत्तिक चिन्तन बहुत कम भिन्नता है। उपनिषदों में भाव्य’

१—इसके क्रम के विषय में देखिए भूमिका पृ० ४ पा० टी

२—इसका नाम ‘विमोह’ (विमोहायण) भी मिलता

सम० सू० ६

चिन्तन उपाय्य प्रवृत्त होता है परन्तु तबमें यह नहीं बताया गया है कि प्राग्म चिन्तन-मनन एक साधना का मार्ग क्या है ? साधना के पथिक की दैनिक जीवनचर्या कही हानी चाहिए या मों कष्टि साधक कसे चरे, कसे बस, कस साधे, कस रिग तथा किस प्रकार तन, मन और बचन की प्रवृत्ति का प्राध्यात्मिक साधना की प्रारंभ, इसका कोई उल्लेख नहीं बताया गया है ।

‘इस तरह उपाय्यता में उल्लेखार्थी तो है, पर प्रवृत्त का पता नहीं लगता । चिन्तन मनन-करने का उपाय्यता दिया गया है, पर उपाय्यता साधक के जीवन में । किस तरह की योग्यता, गुण निष्पन्नता हानी चाहिए तथा कितना समय हानी चाहिए, उपाय्यता स्पष्ट विधि विधान प्राचीन उपाय्यता में पत्तिगित नहीं हला । न समय का विधि विधान है न त्याग-तप का ही ।

‘यदि प्राध्यात्मिक चिन्तन-मनन एक मयमी जीवन का साधना स्तार करना हो तो इसारे समस्त धर्म परम्परा का यह प्राचीन सर्वोत्तम काय्य साधारण सूत्र है ।’

१ जैन-साहित्य का इतिहास आचारान्न सूत्र (‘धम्म’ धर्म
६ अङ्क १ पृ० ८)

७ शैली और रचना समय

आचाराङ्ग की शैली और उसके रचना समय के बारे में ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने हुए डॉ० टी० एन० दय एम० ए वी० टी० (बम्बई), पीएच० डी० (लंदन) लिखते हैं —

“धूमरा सारा स्कन्ध (अग्निम काव्यमय अर्घ्ययन वाद देने पर) मुख्यतः गद्य में लिखा हुआ है और यह गद्य जैन बौद्ध गौली का अर्थात् आवर्तन पुनरावर्तन वाला तथा पर्याय प्रपर्याय के साहित्य चाना है। जबकि प्रथम स्कन्ध की शैली तद्न जुड़ी है। यह गौली केवल गद्य की (अ० ६) और गद्य पद्य के मिश्रण की है। बड़े गद्य के टुकड़ के बाद बड़ा पद्य का टुकड़ा आता रहता है (अ० ३ उ० ३ अ० ८ वर्गैरह)। इतना ही नहीं पर एक एक, दो-दो गद्य खण्ड के बाद एक-दो पद्य आते हैं (अ० ३ उ० २, अ० ८ उ० ३ वर्गैरह)। कभी तो गद्य के बीच में पद्य का एक दो पाद इस प्रकार मिला रहता है कि उसको अलग करना कठिन हो जाता है। (अ० ४ उ० ३ सू० २५८ अ० ३ उ० ४ सूत्र २१४ २१६)। यह मिथ गौली बहुत पुरानी है। एतरेय ब्राह्मण^१, उपनिषद्^२,

१—शुन शैली कथा का उदाहरण सत्रमे अधिक् विदित है।

२—छान्दोग्य और बृहद्गण्यन मे यह स्थिति स्थान-स्थान पर है।

और कृष्ण यजुर्वेद^३ में महू गानों की पूजा का पट्टची हुई दिखती है। जब कि गद्यमयी गौरी आचार्य का भाष्य है। दूसरे, जो पद्यमय गद्यात्मक भाषित होने हैं वे ब्रह्मवैवर्त और वन हमरे पुराने विष्णुम्, अनुष्णुम् जैसे छंदा की बर्णियां हैं। यह भी गौरी श्री प्राचीनता की सूचना करता है^४।

“भाषा की दृष्टि में तथामत पर मस्य जैन भाष्य में श्री आचार्य को भाषा प्राचीनतम है।

“श्रीगीता का पञ्चात्मक उपनिषद् का बाल में रचा जाता है, और श्री आचार्य मूत्र का श्री गंगा के माथ इत्यादि अधिक नाम्य करने हुए तथा शैवी में उगका नाम्य ब्राह्मण उपनिषद् के माथ रखने हुए श्री आचार्य मूत्र का जैन ग्रन्थों में मदन पुराणि मानने में और उसे विन्म्व न विन्म्व लगभग ई० पू० तीसरे शतक में

३—लगभग सारा कृष्णयजुर्वेद हम शैली में है।

४/—अ० २ उ० ४ मूत्र १०८ ११२ के टुकड़े ऐसे ही हैं।

६—प्रो० गृध्रिग ने लम्बे जसों का उच्चारण करने तथा उनके मूत्र की गोत्र करने का सूत्र प्रयत्न किया है और उसमें उनका मूत्र ही सफरता मिली है। देखिए Worte Maha-
१११५ का उपोद्धान।

रसन में गति नही मालूम दती । यह उसम सदी, प्रथम सदी पूर्व का भी हो सकता है ।

इस पुस्तक में आचारांग के प्रथम श्रुतस्वध के सूक्तों का संग्रह है । साथ में उनका हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है । हिन्दी अनुवाद में गूढ़ अर्थ का वहीं पर पर्यायवाची शब्द व वाक्य द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न रहा है । वाक्यों के टुकड़े और उनका सम्बन्ध अपने चिन्तन के अनुसार निर्धारित किया है । इस दृष्टि से अर्थ अनुवाद और इस अनुवाद में मौनिक अन्तर भी पाठकों को दिखाए गए । आचारांग गूढ़ गभीर सूत्र है । उन हम अहिता और आचार की महिला कहें मरन हैं । अहिता का अरथन्त गभीर चिन्तन और उन्धाप इग अङ्ग में है । मनुष्य, पशु पत्नी, कीड़े मकाड़े पृथ्वी, अग्नि, वायु तंत्र और वनस्पति काय सब जीवों का एक तत्ता पर तात्न कर सबके प्रति समान अहिता भावना रखने का उपदेश इस अंग में स्वान स्वान पर आया है और इगत् प्रथम अध्ययन के ७ उद्देशक ता विनोप कर इसी विषय व विवेचन के लिए प्रयुक्त हैं । यह अंग सूक्तों का भण्डार है और

७—आचाराङ्ग सूत्र (सप्त बाल) गुजराती निर्देशन पृ०
४३ ४४ तथा ४६ का अनुवाद—

इन छाटे-छाटे वाक्य महान् जीवन-मूत्र से हैं। पाठक उन्हें पढ़ कर स्वयं इस वाक्य का अनुभव कर सकेंगे।

डॉ० शक्ति ने आचार्य के प्रथम अन्वेषण का जयन्त भाष्य में अनुवाद करते हुए उसका नाम *Worte Mahaviras* 'महावीर के शब्द' रक्का है। उनका मत है कि इस अन्वेषण में महावीर की मूल वाणी सुरक्षित है। इस विषय में श्री गणेश दास जीवाभाद पत्र लिखते हैं —

“आचार्य के अन्वेषण में तो जल्द बहा जा सकता है कि यदि किता भी मूत्र में महावीर के अमन शब्द मण्डित हुए हैं ऐसा कह सकते हैं तो वह आचार्य है। इस तरह इस सृष्टि सन्दर्भ में पाठक का महावीर के अमने अर्थात् अमनशील वाक्यों का दान हो सकेगा।

अन्य में मैं उन सब विद्वानों और प्रकाशकों के प्रति अपनी आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी रचना व प्रकाशन का अभाव इस पुस्तक के सम्पादन में सहायक हुआ है। माई एन. डी. कुमार ने पाठ मिलाने और प्रूफ सत्यापन के कार्य में जो सहायता मुझे दी है उसीके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

१—महावीरस्वामी जो आचार्य (आवृत्ति पहली) के गुजराती उपोद्धान पृ० १४ का अनुवाद।

पुस्तक सूची

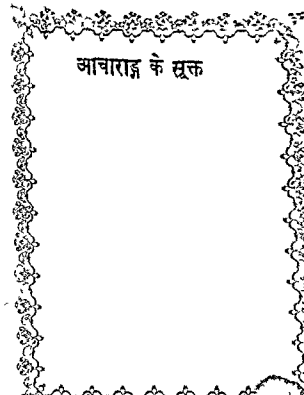
इस पुस्तक के सम्मान में त्रिन-दिन पुस्तक का संवनाकन विद्या गया है, उनकी सूची इस प्रकार है -

- १ श्री आचारंग सूत्रम् (मूल, नियुक्ति, टीका । शास्त्र का मूल चर गाहिय प्रचारक समिति, वाराणसी)
- २ आचारंग सूत्र (मूल पाठ डाक्टर बाबू लक्ष्मी शरण मणोधिप)
- ३ आचारंग सूत्र
- ४ वेद सूत्र भाग १ (प्रो० जी अनुवाद । अनु० हसन उर्फ़ी Sacred Books of the East Vol XXIV)
- ५ आचारंग सूत्र (प्रथम अनुवाद का प्रकाशक अनुवादक श्री मनवान)
- ६ महावीरस्वामीना आचारंग सूत्र (प्रो० लक्ष्मी शरण मणोधिप सम्पादक गोपालदास जीवामार्गिक)
- ७ आचारंग सूत्रम् (प्रथम अनुवाद का प्रकाशक अनुवादक मुनि श्री मौभास्यमन)
- ८ आचारंग सूत्र (प्रथम अनुवाद का प्रकाशक अनुवादक श्री शिवा कुमारी बोधरा)

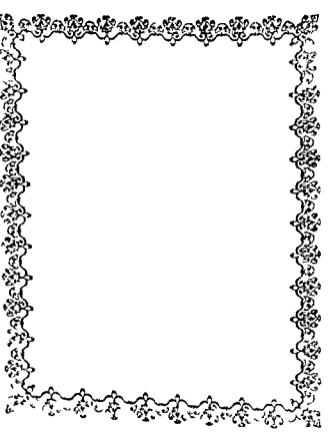
- ८ श्री आचारांग सूत्रम् (प्रथम श्रुतस्वध का हिन्दी अनुवाद ।
अन० प० घबरचन्द्र बाठिया)
- ९ जैन साहित्य का इतिहास आचारांग सूत्र (प्रा० दलमुख
मालवणिया 'धम्मण वप ८ अ० १२ से)
- १० आर्हत आगमानु अवलोकन माने तत्त्वसिद्धि चन्द्रिका (प्रणेता
प्रा० हीरानाथ रसिकदास कापडिया एम० ए०)
- ११ आगमोनु दिग्गान (वही)
- १२ A History of the Canonical Literature
of the Jains वही)
- १३ A History of Indian Literature VOL II
(by Maurice Winternitz, ph D)
- १४ Some Jaina Canonical Sutras (by Bimala
Charan Law, M A , B L , ph D , D Litt)
- १५ समवायांग सूत्र
- १६ नन्दी सूत्र

विषय-क्रम

१	शस्त्र-परिज्ञा	
	(१) आत्मवादी कौन ?	
	(२) कर्म-समारम्भ	५
	(३) पृथ्वीकायिक हिंसा	६
	(४) अप्कायिक हिंसा	१३
	(५) अग्निनायिक हिंसा	१६
	(६) वायुनायिक हिंसा	२४
	(७) वनस्पतिकायिक हिंसा	३१
	(८) प्रमकायिक हिंसा	२७
	(९) शस्त्र-परिज्ञा	४३
	(१०) एकेन्द्रियों की वेदना	४६
	(११) महापथ	६१
२	लोक विजय	६७
३	शीतोष्णोप	७७
४	सम्यक्त्व	१३६
५	लोकसार	१७३
६	धूत	२०३
७	विमोच	२४५



आचाराङ्ग के सूक्त



सुय मे आउस !
तेण भगवया एउमकसाय :
मं ने सुना है, आयुष्मन् ।
उन भगवान् ने ऐसा कहा

१

आयावादी

१—इहमेगेसि णो सण्णा भवइ तजहा—
 पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहममि,
 दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 पश्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 उद्दहाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
 अहो दिमाओ वा आगओ अहमसि,
 अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा
 आगओ अहमसि ।

२—एवमेगेसि णो णाय भवइ—अत्थि
 मे आया उयवाइण, णत्थि मे आया उयवाइण,

आत्मवादी कौन ?

५

१

आत्मवादी कौन ?

१—संसार में कई लोगों को— मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, दक्षिण दिशा से आया हूँ, पश्चिम दिशा से आया हूँ, उत्तर दिशा से आया हूँ, उर्ध्व दिशा से आया हूँ, अधो दिशा से आया हूँ या अन्य किसी दिशा अनुदिशा से आया हूँ—यह संज्ञा नहीं होती ।

२—कइयों को—“मेरी आत्मा औपचारिक—
पुनर्जन्म करने वाली—है अथवा नहीं है मैं कौन था

के अह आसी ? के वा इओ चुए इह पेधा
भविस्सामि ?

३—से ज पुण जाणेज्जा सह सममइयाण
परवागरणेण, अण्णंमिअतिए वा मोघातजहा—
पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि,
जाव अण्णयरीओ दिसाओ अणुदिसाओ वा
आगओ अहमसि ।

४—ण्वमेगेसि ज णाय भयइ—अत्थि मे
आया उववाइए, जो इमाओ दिसाओ अणु-
दिसाओ वा अणुमचरइ, सव्वाओ दिसाओ
अणुदिसाओ सोइइ ।

५—से आयावाणी लोयावादी कम्मा-
वादी निरियावादी । (ध्र० १ अ० १ उ० १)

आत्मवादी कौन ?

७

एवं यहाँ से च्युटकर परलोक में मैं क्या होऊँगा ? —
यह ज्ञान नहीं होता ।

३—स्वमति से दूसरे के कहने से अथवा दूसरे से
सुनकर मनुष्य फिर कभी—“मैं पृथ्वी आदि किसी
दिशा से आया हूँ, अथवा अन्य दिशा अनुदिशा से आया
हूँ”—यह जानता है ।

४—किसी किसी को—“मेरी आत्मा औपचारिक
है—पुनर्जन्म करनेवाली है तथा “जो इन दिशाओं
अनु दिशाओं से आता है तथा सब दिशाओं अनुदिशाओं
में भ्रमण करता है वह मैं ही हूँ”—यह ज्ञान होता है ।

५—जिसे ऐसा ज्ञान होता है वही पुरख आत्मवादी
लोकवादी कर्मवादी और क्रियावादी होता है ।

कम्मसमारभा

१—अकरिस्स चऽह, काग्वेसु चऽहं,

० १ ० १ ० १ ० १

० १ ० १ करओ आवि

समणुन्ने भयिस्सामि ।

अयायति सव्यावति लोगसि कम्मसमारभा
परिजाणियव्वा भवति ।

०—अपरिणायकम्मा खलु अयं पुरीसे
जो इमाओ दिसाओ अणुदिमाओ अणु-
सचरइ, मन्वाओ दिमाओ सन्वाओ अणु-
दिमाओ साहेति । अणंग रुवाओ जोणीओ
सथेइ, विरुवरुणे फासे पडिसवेदेइ ।

कर्म-समारम्भ

१—मैंने किया, मैंने कराया, करते हुए ही का अनुमोदन किया, मैं करता हूँ, कराया हूँ, करते हुए का अनुमोदन करता हूँ; मैं करूँगा मैं कराऊँगा करते हुए का अनुमोदन करूँगा—लोक में सर्व कर्मसाम्य—क्रिया के प्रकार—इतने ही हैं। वे परिच्छेद हैं—इन्हें जानना चाहिए।

२—निश्चय ही अपरिभातकर्ता प्राप्त है। जो इन दिशाओं अनुदिशाओं से आता है सर्व दिशाओं अनु दिशाओं को प्राप्त करता है अनेक प्रकार की लोकियों का उपाजन करता है तथा विविध प्रकार के स्वार्थों—दुःखों का प्रतिसंवेदन करता है।

३—इमस्म चैव जीवियस्म परिवदण-
माणणपृयणाण जाइमरणमोयणाण दुक्खपडि-
ग्घायहेड ।

एयावति सव्वावति लोगमि कम्मममा-
रम्भा परिजाणियन्वा भवन्ति ।


४—जस्सेते लांगमि कम्मसमारम्भा परि-
ण्णाया भवति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति
वेमि ।

(श्रु० १ अ० १ व० १)

कर्मसमारम्भ

११

३—प्रश्न इस जीवन के लिए परीक्षण—यश के लिए, मान के लिए, पूजा—सम्कार के लिए, लाभ और मृत्यु से घुटकाग पाने के लिए तथा दुःख के प्रतिपत्ता के लिए /मनुष्य उदरोक्त रूप से क्रियाओं में प्रवृत्त होता है ।
लोक में सा कर्मसमारम्भ—क्रिया की भावना—
इतनी ही है । इन्हें जानना चाहिए ।

४—लोक में कर्मसमारम्भ के दो प्रकार  होते हैं वही परिणतकर्मा मुनि कहलाता है । यही मैं कहता हूँ ।



३

पुढविकम्मसमारम्भ

१—अणगारा मो त्ति णो पय्यमाणा
जमिण त्रिरुवरुवेहिं मत्थेहिं पुढविकम्मसमा-
रभेण पुढविसत्थ समारभेमाणा अण्ण अणेग-
रुवे पाणे त्रिहिंसड ।

२—इमस्स चेव जीवियस्स परिवदण-
माणणपूयणाए, जाडमरणमोयणाए, दुक्खपडि-
घायहेऊ, से सयमेव पुढविसत्थ समारम्भइ,
अण्णेहिं वा पुढविसत्थ समारम्भावेइ, अण्ण
वा पुढविसत्थ समारम्भते ममणुजाणड ।

त से अहियाण, त से अबोहिण

३ पृथ्वीकायिक हिंसा

१—हम अनगार हैं ऐसा कहते हुए भी कोई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से पृथ्वीविषयक कर्मसमारंभ करते हैं तथा पृथ्वीशस्त्र का समारंभ करते हुये पृथ्वी के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

२—मनुष्य इस जीवन के लिए, प्रशंसा सम्मान और पूजा के लिए, जन्म-मरण से घुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु, स्वयं पृथ्वीकायशस्त्र का समारम्भ करता है दूसरों से शस्त्र समारम्भ करवाता है और शस्त्र समारम्भ करनेवालों को अच्छा समझता है ।

यह पृथ्वीकाय की हिंसा करनेवाले के लिए अहित कर होती है यह उसके लिए अवधि का कारण होती है ।

एस खलु गथे, एस खलु मोहे, एस खलु
मारे, एस खलु णरए

३—इत्थं गच्छिष्ये लोए जमिण विरूव-
रूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारम्भेण पुढवि-
सत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे
विहिंसइ ।

४—एत्थं सत्थं समारम्भमाणस्स इच्छेते
आरम्भा अपरिण्णाया भवन्ति,

एत्थं सत्थं असमारम्भमाणस्स इच्छेते
आरम्भा परिण्णाता भवन्ति ।

५—तं परिण्णाय मेहाधी नेव सयं पुढवि-
सत्थं समारम्भेजा, नेवण्णेहिं पुढविसत्थं समा-

निश्चय ही यह पृथ्वीकाय का समारम्भ बन्धन का कारण है मोह का कारण है मृत्यु का कारण है और यही निश्चय ही नरक का हेतु है।

३—प्रशंसा-मान-पूजा आदि मत्विनाओं में गूढ मनुष्य इन विविध शस्त्रों द्वारा पृथ्वीकायविरुद्ध कर्म समारम्भ करता है तथा पृथ्वी शस्त्र का समारम्भ करता हुआ वह पृथ्वी जीवों की हिंसा के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करता है।

४—पृथ्वीकाय के प्रति शस्त्र समारम्भ करनेवालों को ये सब आरंभ अज्ञात होते हैं।

पृथ्वीकाय के प्रति शस्त्र समारम्भ न करनेवालों को इन सब आरंभों का ज्ञान होता है।

५—यह जानकर मेधावी न रथवं पृथ्वी शस्त्रका समारम्भ करे न दूसरों से इस शस्त्र का समारम्भ

रम्भावेज्ञा, नेत्रण्ये पुढविसत्य समारम्भन्ते
समणुजाणेज्ञा ।

६—जस्सेते पुढविकम्मसमारम्भा परि-
ण्णाया भवन्ति से ह्मु सुणी परिण्णायकम्मे ति
वेमि ।

(श्रु० १ अ० १ उ० १)

करवाये और न इस शस्त्र का समारंभ करनेवालों को अच्छा समझे।

६—जिसको पृथ्वी-जोव विषयक कर्म समारंभों का ज्ञान होता है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है—ऐसा मैं कहता हूँ।

४

उदयसकम्मसमारम्भ

१—अणगारा मो त्ति एणे पवयमाणा,
जमिण विरूवरूवेहि सत्येहि उदयकम्मसमा-
रम्भेण, उदयसत्य समारम्भमाणा अण्णे अणेग-
रूवे पाणे विहिसइ ।

२—इमस्स चेथ जीवियस्स परिघदणमा-
णणपूयणाए, जाइमरणमोयणाए, दुवत्तपडि-
घायहेउ, से सयमेव उदयसत्य समारम्भति,
अण्णेहि वा उदयसत्य समारम्भावेति, अण्णे
वा उदयसत्य समारम्भन्ते समणुजाणाइ,
त से अहियाए, त से अयोहिए

४

अपकायिक हिंसा

१ हम अनगार हैं ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से अप् (पत्नी) विषयक कर्म समारम्भ करते हैं तथा अप्शस्त्र का समारम्भ करते हुए अप् के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

२—मनुष्य इस जीवन में प्रशंसा सम्मान और पूजा के लिए जन्म और मरण से घुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु स्वयं अप्काय शस्त्र का समारम्भ करता है दूसरों से शस्त्र समारम्भ कराता है और शस्त्र समारम्भ करनेवालों को अच्छा समझता है ।

यह अप्काय की हिंसा करनेवाले के लिए अहितकर होती है यह उसके लिए अवीधि का कारण होती है ।

एत खलु गधे, एम खलु मोहे, एम मलु
मारे, एम खलु णरण ।

३—इषत्यं गङ्गिण लोण जमिण विस्वयस्-
वेहिमत्येहि वदयकम्मसमारम्भेण, उदयसत्य
समारम्भमाण अण्णे अणेगरूपे पाण विहिमइ

४—एत्थ सत्य समारम्भमाणस्स इच्चते
आरमा अपरिण्णाया भवति,

एत्थ सत्य असमारम्भमाणस्स इच्चते
आरमा परिण्णाता भवति ।

५—त परिण्णाय मेहायी णेव सय उदय-
सत्य समारम्भेजा णेवण्णेहि उदयसत्य समा-

निश्चय ही यह अपकाय का समारंभ बंधन का कारण है मोह का कारण है मृत्यु का कारण है और निश्चय ही यह नरक का हेतु है ।

३—प्रशंसा मान-पूजा आदि भावनाओं में गुद मनुष्य इन विविध शस्त्रों द्वारा अपकाय विषयक कर्म-समारंभ करता है तब अप शस्त्र का समारंभ करता हुआ, वह अप जीवों की हिंसा के साथ-साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करता है ।

४—अपकाय में शस्त्र समारंभ करनेवालों को ये सब आरंभ अज्ञात होते हैं ।

अपकाय में शस्त्र समारंभ न करनेवालों को इन सब आरंभों का ज्ञान होता है ।

५—यह जानकर मेधावी न स्वयं अपजीवकाय के शस्त्रका समारंभ करे न दूसरों से इन शस्त्रोंका समारंभ

रभावेज्जा, उदय सत्य समारभतेऽवि अण्णे ण
समणुज्जाणेज्जा ।

६—जस्सेते उदयसत्यसमारभा परिण्णाया
भवति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति
वेमि । १११ ३

कराये और न इन शस्त्रों का समाारंभ करने वाले को
अच्छा समझे ।

६—जिसको अप्जीव विपदक कर्म समाारम्भों का
ज्ञान होता है वही परिश्रितकर्मा मुनि है—ऐसा मैं कहता
हूँ ।

५

अगणिकम्मसमारम्भ

१—अणगारा मो ति णो पययमाणा,
जमिण विरुवरुवेहि मत्येहि अगणिकम्मसमार-
भेण अगणिसत्थ समारम्भमाणे अण्णे अणे-
गरुवे पाणे विहिंसइ ।

२—इमस्स चव जीवियम्म परिवदण-
माणणपूयणाए, जाइमरणमोयणाए, दुक्कय-
पडिघायहेउ से मयमेव अगणिसत्थ समारभति,
अण्णेहि वा अगणिसत्थ समारभावेइ, अण्णे
वा अगणिसत्थ समारभमाणे समणुजाणइ ।

त से अहियाए, त से अबोहिए ।

अग्रिकायिक हिंसा

१—हम अनगार हैं ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से अग्नि विषयक कर्म-समारम्भ करते हैं तथा अग्नि शस्त्र का समारम्भ करते हुए अग्नि के साथ-साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

२—मनुष्य इस जीवन में प्रशंसा सन्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से घुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु स्वयं अग्रिकाय शस्त्र का समारम्भ करता है दूसरों से शस्त्र-समारम्भ करवाता है और शस्त्र समारम्भ करने वाले को अच्छा समझता है ।

यह अग्रिकाय की हिंसा करने वाले के लिए, अहित कर होती है यह उसके लिए अवोधि का कारण होती है ।

एस खलु गंधे, एस खलु मोहे, एम खलु
मारे, एस खलु णरण ।

३—इच्छत्य गङ्घिए लोण जमिण विरुध-
रुवेहि सत्येहि अगणिस्समारभेण अगणि-
सत्य समारभमाणे अण्णे अणेगरुवे पाणे
विहिसइ ।

४—एत्य सत्य समारभमाणस्स इच्छते
आरभा अपरिण्णाया भवति,
एत्य सत्य असमारभमाणस्स इच्छते
आरभा परिण्णाता भवति ।

५—त परिण्णाय मेहावी णेय सय अगणि-
सत्य समारभेज्जा णयण्णेहि अगणिसत्य

निश्चय ही यह अक्रियता का कारण है मोह का कारण है।
निश्चय ही नरक का हेतु है।

उ को अच्छा

समारम्भों का
ह—रेता में

३—प्रशंसा-माल-पुण्य
इन विविध शस्त्रों द्वारा अक्रियता
करता है तथा अप्रि शस्त्र का
अप्रि जीवों की हिंसा के सदृश जो प्राणियों की भी हिंसा करता है।

४—अप्रिकायमें शस्त्र-
सब आरम्भ अज्ञात होते हैं।

अप्रिकाय में शस्त्र-
सब आरम्भों का ज्ञान होता है।

५—यह जानकर
समारम्भ करे न दूसरी

समारम्भावेज्जा, अगणिसत्थ समारभमाणे
अण्णे न समणुज्जाणेज्जा,

६- जस्सेते अगणिकम्मसमारम्भा परि-
ण्णाया भवन्ति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति
वेमि १।१ ४

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

२१

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ

६

वाडकम्म समारम्भ

१—अणगारा मो त्ति एगे पवयमाणा,
जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाडकम्मसमारभेण
वाडकायसत्थ समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे
पाणे विहिंसइ

२—इमस्स चेव जीवियस्स, परिवदण-
माणणपूयणाए, जाइमरणमोचणाए, दुक्ख-
पहिधायहेउ, से सयमेव वाडसत्थ समारम्भति,
अण्णेहिं वाडसत्थ समारम्भावेइ, अण्णे वा
वाडकायसत्थ समारम्भन्ते समणुजाणइ ।

त से अहियाए, त से अबोहिए

वायुकायिक हिसा

१—हम बनार हैं ऐसा वास्तु हर भी वाँ हन हिंडर
 प्रकार के शक्तों से वयु विन्दक कर्ष समारंभ करते हैं
 तथा वायु-शस्त्र का समारंभ करते हैं, वयु के सट सव
 अन्य अनेक तरह के प्रणियों को भी हिसा करने हैं ।

२—मनुष्य इस जीवन में, प्रशंसा, सम्मान और पूजा
 के लिए, जन्म और मरण से छुटकारा पाने के लिए और
 दुःख निवारण के हेतु वायुकाय शस्त्र का समारंभ
 करता है दूसरों से शस्त्र-समारंभ करवाता है और
 शस्त्र-समारंभ करनेवालों को अच्छा समझता है ।

यह वायुकाय को हिसा करनेवाले के लिए, अहितकर
 होती है यह उसके लिए, अबोधि का कारण होती है ।

सत्य समारम्भावेज्जा, णेवऽण्णे वाउसत्य
समारभते ममणुजाणेज्जा,

६—जस्सेते वाउकायसत्यसमारभा
परिण्णाया भवन्ति से ह्नु सुणी परिण्णायकम्मे
त्ति वेमि ।

(अ० १ अ० १ उ० ७)

समारम्भ करावे और न शस्त्र का समारम्भ करने वाले को अच्छा समझे ।

६—जिसको वायु-जीव शिवदक कर्म समारम्भों का ज्ञान होता है वही परिहातकर्मा मुनि है—ऐसा मे कहता हूँ ।

७

वणस्सइकम्मसमारम्भ

१—अणगारा मो त्ति ण्णे पवयमाणा,
जमिण विरुवम्ब्वेहिं सत्थेहिं वणस्सइकम्म-
समारभेण वणस्सइसत्थ समारभमाणा अण्णे
अण्णेगल्लवे पाणे विहिंसति ।

२—इमस्स चेव जीवियस्स परिवदण-
माणणपूयणाण, जाइमरणमोयणाए, दुक्खपडि-
घायहेउ, से मयमेय वणस्सइसत्थ समारभइ
अण्णेहिं वा वणस्सइसत्थ समारभावेइ, अण्णे
या वणस्सइसत्थ समारम्भमाणे समणुजाणइ ।

त से अहियाए, त से अबोहीए ।

७

वनस्पतिक्रायिक हिंसा

१—हम अनार हैं ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से वनस्पति विषयक हर्म समारम्भ करते हैं सदा वनस्पति शस्त्र का समारम्भ करते हुए वनस्पति के साथ-साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य इस जीवन में प्रशंसा सम्मान और पूजाके लिए जन्म और मरण से घटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु स्वयं वनस्पतिक्राय शस्त्र का समारम्भ करता है दूसरों से शस्त्र समारम्भ कराता है और शस्त्र समारम्भ करनेवालों की अक्षय समझता है।

एस खलु गंघे, एस खलु मोहे, एस खलु
मारे, एस खलु णरण ।

३—इच्छत्य गङ्गा लोण, जमिण विरूव-
रुवेहि सत्येहि धणस्सइकम्मसमारभेण, वणस्सइ-
सत्य समारभमाणे अण्णे अणेगरुवे पाणे
विहिसंति ।

४—एथ सत्य समारभमाणस्स इच्छेते
आरभा अपरिण्णाता भवन्ति ।

एथ सत्य असमारभमाणम्म इच्छेते
आरभा परिण्णाया भवति ।

यह वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाले के लिए अहित कर होती है यह उसके लिए अबोध का कारण होती है ।

निश्चय ही यह वनस्पतिकाय समारम्भ दन्धन का कारण है मोह का कारण है मृत्यु का कारण है और यही निश्चय ही नरक का द्वार है ।

३—प्रशंसा, मान पूजा आदि भावनाओं में गुद मनुष्य इन विविध शस्त्रों द्वारा वनस्पतिकाय विषयक कर्म-समारम्भ करता है तथा वनस्पति शस्त्र का समारम्भ करता हुआ वह वनस्पतिकाय जीवों की हिंसा के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करता है ।

४—वनस्पतिकाय के प्रति शस्त्र-समारम्भ करनेवालों को ये सब आरम्भ अज्ञात होते हैं ।

वनस्पतिकाय के प्रति शस्त्र समारम्भ न करनेवालों को इन सब आरम्भों का ज्ञान होता है ।

१—स परिणाय मेहावी जेय सयं यणस्सइ
 सत्य समारभेज्जा जेवण्णेहि यणस्सइसत्यं
 समारभायेज्जा, जेवण्णे यणस्सइसत्यं
 समारभंते समणुज्जाणेज्जा,

६—जस्सेते यणस्सतिसत्यममारंभा
 परिणायया भवति से तु मुणी परिणायकम्मे
 —त्ति वेमि ।

(सु० १ अ० १ उ० ५)

५—एक वृक्षज मेषादीन न लई कान्यकवि दानत्र का स्नानम्न करे न दुष्पत्तै के इय जत्र का स्नानम्न कएई छी न इय दानत्र का स्नानम्न कएइजले को बरका समझे ।

६—जिसको वनस्पति जीव विषयक छद्म-कान्यक का ज्ञान होता है एही परिकल्पक कह्ये ॥—॥ म कहता है ।

८

तमकायकम्मसमारम्भ

१—अणगारा भो त्ति एणे पवयमाणा,
जमिण विरूवरूवेहिं सत्येहिं तसकायसमारभेण
तसकायसत्य समारभमाणा अण्णे अणेगरूवे
पाणे विहिंसति

२—इमस्स चेव जीवियस्म, परिवदण-
माणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्ख-
पडिघायहेउ, से सयमेव तसकायसत्य समार-
भन्ति अण्णेहिं वा तसकायसत्य समारभावेइ
अण्णे वा तसकायसत्य समारभमाणे
समणुत्ताणइ ।

ब्रह्मकायिक हिंसा

१—हम अन्याय हैं ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से ब्रह्म विषयक कर्म-समारम्भ करते हैं तथा ब्रह्मकाय शस्त्र का समारम्भ करते हुए ब्रह्मकाय के साथ-साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

२—मनुष्य इस जीवन में प्रशंसा सम्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से घूटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु स्वयं ब्रह्मकाय शस्त्र का समारम्भ करता है दूसरों से शस्त्र समारम्भ करवाता है और शस्त्र-समारम्भ करने वालों को अच्छा समझता है ।

त से अहियाण, त से अबोहीए ।

एस खलु गये, एस खलु मोहे, एम खलु
मारे, एम खलु णरण ।

३—इच्छत्य गद्धिण लीग जमिण विरूय
रूवेहिं सत्येहिं तसकायसमारभेण, तसकायसत्य
समारभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति ।

४—एत्य सत्य समारंभमाणस्त इच्छते
आरभा अपरिण्णाया भवति ।

एत्य सत्य असमारम्भमाणस्त इच्छते
आरभा परिण्णाया भवति ।

ब्रह्मकायिक हिसा

५

यह ब्रह्मकाय की हिसा करने में है किन्तु जगत्
हीली है यह उसके किन्तु जगत् का कारण है।

निश्चय ही यह ब्रह्मकाय का कारण है,
काल है मोह का कारण है, मृत्यु का कारण है।
निश्चय ही नाक का हेतु है।

३—प्रशंसा-मान-पुत्रा अदि ब्रह्मकाय में ब्रह्मकाय
इन विधि शस्त्री द्वारा ब्रह्मकाय किन्तु ब्रह्मकाय
करता है तथा शस्त्र का विनाशक रूप प्रशंसा
जोदी की हिसा के साद-मह अदि ब्रह्मकाय
प्राणियों की भी हिसा करता है।

४—ब्रह्मकाय में शस्त्र-कारण ब्रह्मकाय में
सब आरम्भ अद्यात् है।

ब्रह्मकाय में शस्त्र-कारण ब्रह्मकाय में
सब आरम्भों का ज्ञान है।

१—त परिण्णाय मेहाधी णेष सयं तस-
 कायसत्थ समारभेज्जा, णेवऽण्हि तसकायसत्थ
 समारभावेज्जा, णेवऽण्णे तसकायसत्थ
 समारभते समणुजाणेज्जा ।

६—जस्सेते तसकायसमारभा परिण्णाय
 भवति से हु मुणी परिण्णायकम्मे—त्ति वेमि ।

(अ० १ अ० १ व० ६)

५—यह जानना मेधावी न स्वयं तम जीवकाल के शस्त्र का समारम्भ करें, न दूसरों से इस शस्त्र का समारम्भ कराये और न इन शस्त्र के समारम्भ करनेवाले को अच्छा समझे।

६—जिसको तम ज्ञान विनयक कर्म-समारम्भों का ज्ञान होता है वही परिश्रमकर्मा मुनि है—दिसा में रहना है।

६

सत्यपरिन्ना

१—सति पाणा पुढोसिया

(श्रु० १ अ०

०—से वेमि सति पाणा उदय
जीवा अणेगे ।

कप्पइ णे कप्पइ ण पाउ, अदुया

पुढो सत्थेहि विवट्टन्ति

एत्थऽपि वेसि नी निकरणाए

इह च खलु भो । अणगाराण

जीवा वियाहिया

सत्य चेत्य अणुवीइ पास, पुढ
पवेश्य

(श्रु० १ अ० १

सर्वज्ञ

१-पृथ्वी में क्या क्या है ?

२-नीला क्या है ?

३-सूर्य की रोशनी क्या है ?

४-वायु क्या है ?

५-पानी क्या है ?

६-आकाश क्या है ?

गय के शास्त्र
म को जानता
अग्नि के स्वरूप

के आश्रय में
य में प्राणो ह
ने आप गिरते
णो संघात को
तने ही मूर्छित
मृत्यु को प्राप्त

स्वप्तिशील है
शील है। जैसे

३—जे दीह्लोगसत्यस्स खेयण्णे से असत्यस्स खेयण्णे, जे असत्यस्स खेयण्णे से दीह्लोगसत्यस्स खेयण्णे ।

से वेमि—सति पाणा पुढवीनिस्सिया तणणिरिस्सिया पत्तणिरिस्सिया कट्टुनिस्सिया गोमयणिरिस्सिया क्यथरणिस्सिया, सति संपाति-
मापाणा आहच सपयति, अगणि च खलु पुट्टा एगे सघायमावज्जति, जे तत्थ सघाय-
मावज्जति ते तत्थ परियावज्जति, जे तत्थ परियावज्जति, ते तत्थ उदायति ।

(श्रु० १ अ० १ उ० ४)

४—से वेमि इमपि जाइधम्मय एयपि जाइधम्मय, इमपि बुद्धिधम्मय एयपि बुद्धि-

३—जो दीर्घलोकशास्त्र—वनस्पतिकार्य के शास्त्र अग्नि—को जानता है वह अशस्त्र—संयम को जानता है; जो अशस्त्र संयम को जानता है वह अग्नि के स्वभाव को जानता है।

मैं कहता हूँ पृथ्वी के आश्रय में पत्तों के आश्रय में गोबर के आश्रय में और कचरे के आश्रय में प्राणों का तथा सम्पातित प्राणी हैं जो आकर अपने अप्रिय हैं। अग्नि से स्पृष्ट हो ऐसे कितने ही प्राणी मर जाते हैं। अग्नि से स्पृष्ट हो ऐसे कितने ही प्राणी मर जाते हैं। अग्नि से स्पृष्ट हो ऐसे कितने ही प्राणी मर जाते हैं। अग्नि से स्पृष्ट हो ऐसे कितने ही प्राणी मर जाते हैं।

४—मैं कहता हूँ जैसे मनुष्य जल को पीता है, वैसे ही यह वनस्पतिकार्य को जानता है, जो

धम्मय , इमपि चित्तमतय एयंपि चित्तमतयं ,
 इमपि द्विष्ण मिळाइ एयपि द्विष्ण मिळाइ ,
 इमपि आहारग एयपि आहारगं , इमपि अणि-
 चिय ण्यपि अणिचिय , इमपि असासय एयपि
 असासय , इमपि चओवचइय एयपि चओ-
 यचइय , इमपि विपरिणामधम्मय एयंपि
 विपरिणाम धम्मय ।

(श्रु० १ अ० १ व० ५)

५—से वेमि सति मे तसा पाणा, तजहा—
 अडया पोयया जराउआ रस्यया ससेयया
 ममुच्छिमा उन्धियया उवयाइया ।

मनुष्य शरीर बुद्धिशील है वैसे ही वनस्पतिकाय भी बुद्धिशील है; जैसे मनुष्य शरीर चितवत् है वैसे ही वनस्पतिकाय भी चितवत् है; जैसे मनुष्य शरीर काटने पर कुम्हला जाता है वैसे ही वनस्पतिकाय भी कुम्हला जाती है; जैसे मनुष्य शरीर आहार करता है वैसे ही वनस्पतिकाय भी आहार करती है; जैसे मनुष्य शरीर अनित्य है वैसे ही वनस्पतिकाय भी अनित्य है; जैसे मनुष्य शरीर अशाश्वत है वैसे ही वनस्पतिकाय भी अशाश्वत है; जैसे मनुष्य शरीर हास और बुद्धिशील है वैसे ही वनस्पतिकाय भी हास और बुद्धिशील है और जैसे मनुष्य शरीर परिणमनशील है वैसे ही वनस्पतिकाय भी परिणमनशील है।

५—मैं कहता हूँ—अंजलि पीतल जरायुज रसज,
सस्वेदज सम्मुच्छनज उद्भिज और औषपातिक—
त्रस प्राणी है।

तत्थ तत्थ पुढो पास आतुरा परित्तावति ।
 से वेमि अप्पेगे अच्चाए हणति, अप्पेगे
 अजिणाए वहति, अप्पेगे मसाए घहंति, अप्पेगे
 सोणियाए वहति, एव हिययाए पित्ताए यसाए
 पिच्छाए पुच्छाए बालाए सिगाए विसाणाए
 दताए दाढाए णहाए ण्हारुणीए अट्टीए अट्टि-
 मिजाए

अट्टाए अणट्टाए
 अप्पेगे हिंसिसु मेत्ति वा वहति
 अप्पेगे हिंसति मेत्ति वा वहति
 अप्पेगे हिमिस्सति मेत्ति वा वहति ।

(अ० १ अ० १ उ० ६)

दत्त ! विनयार्त मनुष्य सर्वत्र दूसरे प्राणियों को परित्याग देते रहते हैं ।

मैं कहना हूँ—कोई इन्हें अर्घा के लिए हलन करता है कोई इन्हें घर्म के लिए हलन करता है कोई इन्हें मांस के लिए हलन करता है और कोई इन्हें शोभित के लिए हलन करता है ।

इसी तरह इन्द्र के लिए, पित्त के लिए, धर्मों के लिए, पिच्छी के लिए, पृथ के लिए, बाल के लिए, सांग के लिए, विद्या के लिए, दांत के लिए, दाढ़ के लिए, नस के लिए, नसों के लिए, अस्थियों के लिए और अस्थि-मज्जा के लिए इनका हलन किया जाता है ।

इसी तरह अर्थ अनर्थ अनेक प्रयोजनों से इन्हें मारा जाता है ।

कोई—इसने मुझे मारा—इस भावना से हिता करता है ।

कोई—यह मुझे मारता है—इस भावना से हिता करता है ।

कोई—यह मुझे मारेगा—इस भावना से हिता करता है ।

६—तसति पाणा पदिसो दिसामु

पहू एजस्स दुगुंद्धणाए,

आयकदसी अदियति णघा ।

से वेभि सति सपाइमा पाणा आइध
संपयति य फरिस च गल्लु पुट्टा एणे संपाय-
मावज्जति, जे तत्थ सपायमावज्जति ते तत्थ
परियावज्जति, जे तत्थ परियावज्जति ते तत्थ
उदायति,

(श्रु० १ अ० १ उ० ७)

७—त परिणाय मेहावी णेघ सय छज्जीव-
निकायसत्थ समारभेजा णेवऽण्णेहि छज्जीव
निकायसत्थ समारम्भावेजा, णेवऽण्णे

६—प्राणी दिशा प्रदिशाओं में श्रास पा रहे हैं ।

हिंसा से होने वाले आतंक को देखनेवाला हिंसा को अहितकर जानकर वायुकाय के आरम्भ से बचने में समर्थ हो सकता है ।

मैं कहता हूँ— सम्पातिन प्राणी है जो आघात पाकर गिर पड़ते हैं । वायुकाय के स्पर्श को पाकर वे जीव घायल हो जाते हैं । जो वहाँ घायल हो जाते हैं वे वहाँ मुर्च्छित हो जाते हैं । जो वहाँ मुर्च्छित हो जाते हैं वे वहाँ मृत्यु को प्राप्य हो जाते हैं ।

७—बुद्धिमान मनुष्य यह सब जानकर स्वयं छ जीवनिकाय शस्त्र का समारम्भ न करे न दूसरों से छ जीवनिकाय शस्त्र का समारम्भ करावे और न छ जीव

छज्जीवनिकाय सत्य समारभते समणुजाणेजा,
 जस्सेते छज्जीवनिकायसत्यसमारभा परिण्णाया
 भवति से हु मुणी परिण्णाय कम्मे ति वेमि
 (श्रु० १ अ० १ उ० ७)

निकाय शस्त्र का समारम्भ करने वालों का अनुमोदन करे ।

जिस मुनि को यह जीवनिकाय शस्त्र के समारम्भ का परिहान होता है—जिसने उसको जाना और छोड़ा है वही परिश्रितकर्मा मुनि है ।

१०

एगेंदियवेयणा

अप्पेगे	अधमब्भे	अप्पेगे	अधमच्छे
अप्पेगे	पायमब्भे	अप्पेगे	पायमच्छे
अप्पेगे	गुप्फमब्भे	अप्पेगे	गुप्फमच्छे
अप्पेगे	जघमब्भे	अप्पेगे	जघमच्छे
अप्पेगे	जाणुमब्भे	अप्पेगे	जाणुमच्छे
अप्पेगे	उरुमब्भे	अप्पेगे	उरुमच्छे
अप्पेगे	कटिमब्भे	अप्पेगे	कटिमच्छे
अप्पेगे	णाभिमब्भे	अप्पेगे	णाभिमच्छे
अप्पेगे	उदरमब्भे	अप्पेगे	उदरमच्छे
अप्पेगे	पासमब्भे	अप्पेगे	पासमच्छे
अप्पेगे	पिट्ठिमब्भे	अप्पेगे	पिट्ठिमच्छे

१०

एकेन्द्रियों की वेदना

जैसे कोई व्यक्ति जन्मान्ध (बहरे, मूक गूंगे)
 पुरुष का भेदन करे छेदन करे,
 उसके पैरों का भेदन करे छेदन करे,
 उसके गुल्फों का भेदन करे छेदन करे,
 उसकी जघा का भेदन करे छेदन करे,
 उसकी जानु का भेदन करे छेदन करे,
 उसके उरु का भेदन करे छेदन करे,
 उसके कमर का भेदन करे छेदन करे,
 उसकी नाभि का भेदन करे छेदन करे,
 उसके पेट का भेदन करे छेदन करे,
 उसके पार्श्वों का भेदन करे छेदन करे,
 उसकी पीठ का भेदन करे छेदन करे,

अप्येगे उरमन्मे	अप्येगे उरमच्छे
अप्येगे हिययमन्मे	अप्येगे हिययमच्छे
अप्येगे थणमन्मे	अप्येगे थणमच्छे
अप्येगे रधमन्मे	अप्येगे रधमच्छे
अप्येगे घाहुमन्मे	अप्येगे घाहुमच्छे
अप्येगे हत्यमन्मे	अप्येगे हत्यमच्छे
अप्येगे अगुलिमन्मे	अप्येगे अगुलिमच्छे
अप्येगे णहमन्मे	अप्येगे णहमच्छे
अप्येगे गीवमन्मे	अप्येगे गीवमच्छे
अप्येगे हणुमन्मे	अप्येगे हणुमच्छे
अप्येगे होट्टमन्मे	अप्येगे होट्टमच्छे
अप्येगे दतमन्मे	अप्येगे दतमच्छे
अप्येगे जिन्ममन्मे	अप्येगे जिन्ममच्छे

उसकी छाती का भेदन करे छेदन करे,
 उसके हृदय का भेदन करे छेदन करे,
 उसके स्तनों का भेदन करे छेदन करे,
 उसके कंधों का भेदन करे छेदन करे,
 उसकी भुजाओं का भेदन करे छेदन करे,
 उसके हाथों का भेदन करे छेदन करे,
 उसकी अंगुलियों का भेदन करे छेदन करे,
 उसके नखों का भेदन करे छेदन करे,
 उसकी प्रीया का भेदन करे छेदन करे,
 उसकी दाढ़ी का भेदन करे छेदन करे,
 उसके ओंठों का भेदन करे छेदन करे,
 उसके दांतों का भेदन करे छेदन करे,
 उसकी जीभ का भेदन करे छेदन करे,

अप्पेगे तालुमन्ने अप्पेगे तालुमच्चे
 अप्पेगे गल्लमन्ने अप्पेगे गल्लमच्चे
 अप्पेगे गडमन्ने अप्पेगे गडमच्चे
 अप्पेगे कण्णमन्ने अप्पेगे कण्णमच्चे
 अप्पेगे णासमन्ने अप्पेगे णासमच्चे
 अप्पेगे अच्चिमन्ने अप्पेगे अच्चिमच्चे
 अप्पेगे भमुद्दमन्ने अप्पेगे भमुद्दमच्चे
 अप्पेगे णिडाल्लमन्ने अप्पेगे णिडाल्लमच्चे
 अप्पेगे सीसमन्ने अप्पेगे सीसमच्चे
 अप्पेगे सपमारए अप्पेगे उदवए

(श्रु० ५ अ० १ उ० २)

उसके सालु का भेदन करे छेदन करे ;
 उसके गले का भेदन करे छेदन करे ;
 उसके गाल का भेदन करे छेदन करे
 उसके कान का भेदन करे छेदन करे
 उसके नाक का भेदन करे छेदन करे ;
 उसकी आँसुओं का भेदन करे छेदन करे ;
 उसकी मूकुरटि का भेदन करे छेदन करे ;
 उसके ललाट का भेदन करे छेदन करे ;
 उसके सिर का भेदन करे छेदन करे ;
 उसे पीटे या प्राण रहित करे तो जैसे उसे पीड़ा
 होती है वैसे ही पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय स्थावर जीवों को
 होती है ।

११

महावीहि

१—अदुवा अदिन्नादाण

(ध्रु० १ अ० १ उ० ३)

२—लोग च आणाए अभिसमेधा

अकुओमय

(ध्रु० १ अ० १ उ० ३)

३—से वेमि णेव सयलोग अन्माइक्खिजा
 णेय अत्ताण अन्माइक्खिजा । जे लीय
 अन्माइक्खइ से अत्ताण अन्माइक्खइ, जे
 अत्ताण अन्माइक्खइ से लीय अन्माइक्खइ

(ध्रु० १ अ० १ उ० ३)

११

महापथ

१—जीवों की हिंसा अदत्तादान—बोरी—है ।

२—तीर्थंकरों की आज्ञा—उपदेश—से जीव-समूह को जानकर अकृत्स्नोमय का पालन करे—जिज्ञासे किसी भी प्राणी को भय न हो ऐसे अमयरूप संयम का पालन करे ।

३—मैं कहता हूँ—मनुष्य स्वयं जीवों का अपलाप न करे न अपनी आत्मा का अपलाप करे । जो जीवों का अपलाप करता है वह आत्मा का अपलाप करता है । जो आत्मा का अपलाप करता है वह जीवों का अपलाप करता है ।

४—निष्काइत्ता पडिलेहिता पत्तेय परि-
 निडराण सव्वेसि पाणाण सव्वेसि भूयाण
 सव्वेमि जीयाण सव्वेसि सत्ताण अरसाय
 अपरिनिडराण महव्वभय दुक्ख ति वेमि

(श्रु० १ अ० १ उ० ६)

५—जे अज्मत्थ जाणइ,
 से बहिया जाणइ ।
 जे बहिया जाणइ,
 से अज्मत्थ जाणइ ।
 एय तुलमन्नेसि

(श्रु० १ अ० १ उ० ७)

६—जे पमत्ते गुणट्ठीए से ह्ठु दडेत्ति पवुषइ

(श्रु० १ अ० १ उ० ४)

४—मे विन्तन का देग का बहना है—एर प्राणी
 की दुस द्विय है। सर्व प्राणी सर्व भूल सब जति
 सर्व सत्त्वो की जात अत्रिद मन्मथ का कारण और
 दुस रूप है।

५—जो अपने अन्तरदल को—अपनी दुस दुस
 की भावना को जानता है वह बाहर की—दुसरे की
 भावना को भी जानता है। जो दुसरे की भावना को
 जानता है वह अन्तरदल की भावना को जानता है।
 'दुस की भावना दुसरे में भी अपने समान है—इस
 कृपा का अन्वेषण कर।

६—जो प्रमादी है जो विषयार्थ है वह निश्चय ही
 टण्ड देने वाला—लक्ष्मी को हनन करने वाला है।

७—धीरेहि ण्य अभिमूय दिदृहं सजएहि
सया जत्तेहि सया अप्पमत्तेहि

(श्रु० १ अ० १ व० ४)

८—तं परिष्णाय मेहाधी इयाणि णो
जमहं पुड्वमकासी पमाएणं

(श्रु० १ अ० १ व० ४)

९—उज्जमाणा पुडो पास

(श्रु० १ अ० १ व० ४)

१०—जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे
से गुणे

(श्रु० १ अ० १ व० ५)

७—संयती सदा यत्नवान् और सदा अप्रमत्त वीर पुरुषों ने कर्मों को पराजय कर यह देखा है ।

८—यह जानकर मेधावी निश्चय करे कि मैंने प्रमाद वश पहले किया वह अब नहीं करूंगा ।

९—देख ! हिंसा से शमनि वाले किले हैं ।

१०—जो गुण है—विषयासक्ति है—वही आवर्त है—जन्म जन्मान्तर का फेरा है; जो आवर्त है—वह विषयासक्ति है ।

११—उद्वड अव तिरिय पाईण पाममाणे
रूवाइ पासति, मुणमाणे सहाइ सुणेति

उद्वड अव पाईण मुच्छमाणे रूवेसु
मुच्छति महेसु आधि

एस डोए वियाहिण

(श्रु० १ अ० १ उ० ५)

१२—एत्थ अगुत्ते अणाणाए पुणो पुणो
गुणासाण वक्समायारे पमत्ते आगार-
मावसे

(श्रु० १ अ० १ उ० ५)

१३—से वेमि से जहावि अणगारे
उज्जुक्के नियायपडिबण्णे अमाय कुट्टवमाणे
वियाहिण

(श्रु० १ अ० १ उ० ३)

महापथ

११—उर्ध्व अधो तिर्यक तथा पूर्वदिशि दिशि
देखता हुआ जीव रूप देखता है, सुनता है
सुनता है।

उर्ध्व अधो तिर्यक तथा पूर्वदिशि दिशि
आसक्त होता हुआ जीव रूप में आसक्त होता है
में आसक्त होता है।

यह मूर्च्छाभाव ही संसार कहा का।

१२—जो रूप और शब्दादि ही संसार
को गुप्त नहीं रखता—नहीं बरत
उल्लंघन कर बार-बार विचलित
वाला वन प्रमादी हो (पुनः) मूर्च्छा।

१३—मैं कहता हूँ—जो शब्द
दर्शन चरित्र-सप रूप) मोहक
माया नहीं करता वही ही संसार है।

१४—सं णो करिस्सामि समुद्दाए मत्ता
मइम अमय विदित्ता त जे णो करए,
एसोवरए एत्थोवरए एस अणयारेत्ति
पव्वुच्चइ

(श्रु० १ अ० १ उ० ५)

१५—जाए सद्दाए निकपंतो तमेव
अणुपालिज्जा, वियदित्ता विसोत्तिय

(श्रु० १ अ० १ उ० ३)

१६—पणया वीरा महावीहिं

(श्रु० १ अ० १ उ० ३)

१४—अमय को सिंहित जलकर जो मदिनाय स्थित
 नहीं करेगा—ऐसी प्रतिष्ठा प्रदान कर जोड़-हीना नहीं
 करता वही सघात—वस्तव में विगत है और जो हिंसा
 से सघात है—विगत है वही अगार कसु जाता है।

१५—विश्वंतसिका—शंका को दूर रात। जिस अज्ञान
 के साथ निरक्षमण किया है—गुह-स्वाग कर प्रदग्ना की
 है उसी अज्ञान के साथ संयम का पालन कर।

१६—वीर पुरुष अहिंसा के मन्त्र पर चल चुके हैं।

१०

लोगविजयो

१—जे गुणे मे मूलद्वारे,
जे मूलद्वारे से गुणे ।

२—उति से गुणद्वी महया परिवारेण पुणे
पुणे वसे पमत्ते

३—तजहा—माया मे, पिया मे, भजा मे,
पुत्ता मे, धूआ मे, ण्डुसा मे, सहिसयण
सगथसधुआ मे, त्रिवित्तुवगरणपरिवट्टण-
भोयणच्छायण मे ।

इत्थत्थ गद्विए लोण वसे पमत्ते ।

१२

लोकविजय

१—जो गुण हैं—इन्द्रियों के शब्दादि विषय हैं वे मूलस्थान-संसार के मूलमूल कारण हैं। जो मूलस्थान-संसार के मूलमूल कारण हैं वे गुण—शब्दादि विषय हैं।

२—इसी कारण जो विषयाधी होता है वह बार-बार प्रमाद-ग्रस्त हो महान् परित्याप से (संतप्त रहता है)।

३—जैसे—मेरी माता मेरा पिता, मेरी भार्या मेरे पुत्र मेरी पुत्री मेरी पुत्र-वधू मेरे मित्र स्वजन परिजन, परिचित मेरे नाना उपकरण, सम्पत्ति अन्न और वस्त्रादि—इस प्रकार प्रायः इन सब में आसक्त रहता है।

वह प्रमादी (निरन्तर चिन्ता में) बास करता है।

४—अहो य राधो य परितप्पमाणे
 कालाकालसमुद्गाई संजोगद्वी अट्टाढोमी आलुपे
 सहसाकारे यिणिविद्वचित्तं एत्य सत्ये पुणो पुणो

५—अप्यं च खलु आउय इहमेगेसि
 माणवाण

६—तज्जहा—सोयपरिष्णाणेहि परिहाय-
 माणेहि, चक्खुपरिष्णाणेहि परिहायमाणेहि,
 घाणपरिष्णाणेहि परिहायमाणेहि, रसणापरि-
 ष्णाणेहि परिहायमाणेहि, फासपरिष्णाणेहि
 परिहायमाणेहि, अभिकंत च खलु धर्यं स पेहाप
 तथो से एगदा मूढभावं जणयन्ति

४—रात दिन इनकी चिन्ता से सन्तप्त संयोगार्थी—
नाना सुख संयोग की कामना करनेवाला अर्थलोभी मनुष्य
काल और अकाल की परवाह न कर उद्यम करता हुआ
एकाग्र चित्त से साहस पूर्वक - निर्भय रूप से—लूट-ससोट
करता है और प्राणियों पर बार-बार शस्त्र चलाता है—
उनकी हिंसा करता है !

५—निश्चय ही इस संसार में कितने ही मनुष्यों का
आयुष्य अल्प—बहुत थोड़ा - होता है ।

६—श्रोत्रेन्द्रियज्ञान के क्षीण होने पर चक्षुज्ञान के
क्षीण होने पर नासिकाज्ञान के क्षीण होने पर जिह्वाज्ञान
के क्षीण होने पर तथा स्पर्शेन्द्रियज्ञान के क्षीण होने पर
अपनी आक्रान्त अवस्था को देख कदाचित् वह किंकर्तव्य
विमूढ़ हो जाता है ।

७—जेहिं वा-सद्भिः सवसद्भिः ते वि ण
 णस्यै गियगा पुर्विः परिचयन्ति सोऽवि ते
 गियए पच्छा परिषएज्जा

८—नाल ते तव वाणाए वा सरणाए वा,
 तुम वि तेसिं नाल वाणाए वा सरणाए वा,

९—से ण हासाए, ण कीडाए, ण विभूसाए

१०—इच्चेव समुट्टिए अहोविहाराए

११—अन्तर घ खलु इम सपेहाए धीरे
 महुत्तमवि णो पमायए

७—जिनके साथ वह बसता है कदाचित् वे ही आत्मीय जन पहले उसका परिहार करते हैं अथवा वह ही उनका बाद में परिहार करता है।

८—उस समय (जब इन्द्रिय बल खीन हो रहे हों) कुटुम्बी तुम्हारी रक्षा करने या तुम्हें शरण देने में समर्थ नहीं होते और न तुम ही उनकी रक्षा करने या उन्हें शरण देने में समर्थ होते हो।

९—बुद्ध हो जाने पर मनुष्य न हास्य के ही न मीढ़ा के ही न रति के ही और न शृङ्गार के ही योग्य रहता है।

१०—इस प्रकार तुम लम्बी यात्रा पर हो।

११—इस मनुष्यभ्रम को बीच का मौका—सुयोग—समस्त धीर मनुष्य मुहूर्त भर भी प्रमाद न करे।

१२ वओ अच्चेति जोव्वण व

१३—जीविए इह जे पमत्ता, से हता,
छेत्ता, भेत्ता, लुपित्ता, विलुपित्ता, उद्वेत्ता,
उत्तासइत्ता अकड करिरसामित्ति मण्णमाणे

१४—उवाइयसेसेण वा सनिहिसनिचओ
किञ्जई इहमेगेसि असजयाण भोयणाए, वओ
से एगया रोगसमुप्पाया समुप्पज्जति

१५—जाणित्तु दुक्ख पत्तेय साय

१२—आयु और यौवन होता जा रहा है।

१३—जो इस नारायण जीवन में प्रमादी होता है वह घातक—घात करने वाला छेदक—छेदन करने वाला भेक—भेदन करने वाला लोपक—छूटने वाला विलोपक—छूट-ससोट करने वाला छपद्मी—भारने वाला और त्रासक—त्रास उत्पन्न करने वाला, 'जो किसी ने नहीं किया वह मैं करूँगा' ऐसा मानता हुआ (अपनी इच्छा को साध लिए हुए ही चल बसता है)।

१४—इस संसार में कई-कई असंयतों मनुष्य बने हुए अथवा अन्य द्रव्यों का अपने उपभोग के लिए संचय करते हैं, पर उपभोग काल के समय कदाचिद् रोगग्रस्त हो पड़ते हैं।

१५—हर प्राणी के सुख-दुःख पुष्क-पुष्क हैं—यह

अणभिककत च खलु वयसपेहाए खण जाणाहि
पडिए

१६—जाव सोयपरिष्णाणा अपरिहीणा,
नेत्तपरिष्णाणा अपरिहीणा, घाणपरिष्णाणा
अपरिहीणा जीहपरिष्णाणा अपरिहीणा,
फरिसपरिष्णाणा अपरिहीणा, इन्वेएहिं
विरुवरुवेहिं पण्णाणेहिं अपरिहीणेहिं आयट्ठ
सम समणुदासिज्जासि

(श्रु० १ अ० २ उ० १)

१७—अरइ आउट्टे से मेहावी, एणसि
मुक्के

जानवर तथा बाकी सभी आयु को देखकर है पंडित ।
इसी ढंग को (धर्म का) अवसर ज्ञान ।

१६—जब तक श्रोत्र-बल क्षीण नहीं होता नेत्र बल क्षीण नहीं होता घ्राण-बल क्षीण नहीं होता जिह्वा-बल क्षीण नहीं होता स्पर्श-बल क्षीण नहीं होता—ये सारे बल क्षीण नहीं होते उनके पहले-पहले ही आत्मार्थ का सम्यक् रूप से—अच्छी तरह से—आराधन कर ।

१७—अरति—संयम के प्रति अरुचि भाव—को दूर कर ऐसा करनेवाला मेधावी ढंग मात्र में मुक्त होता है ।

१८—अणाणाय पुट्ठावि एगे नियट्टंति,
मदा मोहेण पाउडा

१९—अपरिग्गहा भविस्सामो समुट्ठाय
लद्धे कामे अभिगाहइ, अणाणाए मुणिणो
पडिलेहति

२०—इत्थ मोहे पुणो पुणो सन्ता नो
हव्वाए नो पाराए

२१—विमुत्ता हु ते जणा जे जणा पार-
गामिणो लोभमओभेण दुगुद्धमाणे लद्धे कामे
णाभिगाहइ

१८—कितने ही मन्दबुद्धि मोह-द्रस्त पुरुष अनाज्ञा से—धर्म के प्रति अरुचि भाव से—युक्त हो संयम से पतित हो जाते हैं ।

१९—हम अपरिग्रही बनेंगे—इस भावना से संयम में समुत्थित होकर कितने ही (मंद पराक्रमी पुरुष) प्राप्त भोगों को ग्रहण करते—सेवन करते हैं । कितने ही (नामधारी) मुनि वीतराग देव की आज्ञा के खिलाफ विषय भोगों को द्रुदते रहते हैं ।

२०—इस प्रकार पुन-पुन विषयों के भोग में आसक्त पुरुष न इस पार का रहता है न उस पार का । (वह न इस लोक का रहता है न परलोक का ।

२१—जो पुरुष पारगामी हैं—लोभ संज्ञा को पार कर चुके—वे विमुक्त हैं । वे लोभ के प्रति अलोभ से घृणा करते हुए प्राप्त भोगों का सेवन नहीं करते ।

२२—विणारि लोभ णिवरम्म एस अक्म्मो
जाणइ पासइ

२३—पडिलेहाए णायकस्वइ, एस अणगारिस्ति
पवुच्चइ

२४—से आययले, से नाइयले,
से भित्तयले, से पिच्चयले,
से देवयले, से राययले,
से चोरयले, से अतिहिचले,
से विविणयले, से समणयले,
इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं कज्जेहिं
दडसमायाण

२२—जो बिना किसी प्रकार के लोभ के निष्क्रमण कर—प्रव्रज्या ग्रहण कर—(सयम का पालन करता है) वह कर्म-रहित हो सब जानता और देखता है।

२३—यह विचार कर लो कि जो (छोड़े हुए विषयों को) आकांक्षा नहीं करता उसी अनगार कहा गया है।

२४—वह आत्मबल—शरीरबल ज्ञातिबल मित्रबल प्रेतबल, देवबल राजबल चोरबल अतिथिबल कृपणबल भ्रमणबल (इनको पाने के लिए) इन भिन्न भिन्न प्रकार के कार्यों द्वारा दण्ड समादान—हिंसा करता है।

२२—विणावि लोभ णिकखम्म एस अक्कमे
जाणइ पासइ

२३—पडिहेह्हाण णावकखइ, एस अणगारित्ति
पवुच्चइ

२४—से आयबले, से नाइनले,
से मित्तबले, से पिच्चबले,
से देवबले, से रायबले,
से चोरबले, से अतिहियले,
से किविणबले, से समणबले,
इच्चेण्हि विरुयख्वेहि कज्जेहि
दडसमायाण

द्वय

ए

१३

रूपत्र हुआ

त वडा
का भव

उसकी

१- लोहित किरी टगा है लोहित के टिक
२- लोहित का (लोहित का पत्तन करता
३) लोहित ही लोहित और देवता है।

४- लोहित का लोहित जी (लोहित टिक
से) लोहित नहीं करता एमि लोहित करता है।

५- लोहित का लोहित—लोहितक लोहितक मिश्रण
लोहित देवक लोहितक, लोहितक लोहितक लोहितक,
लोहितक (लोहितक लोहितक के लोहितक) इन लोहितक लोहितक
लोहितक के लोहितक द्वारा लोहितक लोहितक—लोहितक करता है।

२८—से असइ उशागोए, असइ नी-
 आगोए,
 नो हीणे नो अइरिस्ते,
 नोऽपीहए,
 इय सराय को गोयाघाइ को माणावाई ?
 फंसि वा एगे गिञ्ज्मा

२९—तम्हा नो हरिसे नो कुप्पे,
 भूपहिं जाण पडिलेह साय,
 समिण पयाणुपस्सी

२८—यह जीव अनेक बार उच्च गोत्र में उत्पन्न हुआ है और अनेक बार नीच गोत्र में ।

इससे न कोई हीन हुआ और न अतिरिक्त बढ़ा (जीव सदा असंख्यात प्रदेशों ही रहा और उसका भव भ्रमण नहीं टूटा) ।

(जिसका सम्बन्ध भव भ्रमण के साथ है) उसको स्पृहा मत करो ।

यह विचार कर कौन अपने गोत्र का वाद करेगा—
उसका टिठोता पीटेगा ? कौन उसकी अभिमान करेगा ?

वह किस एक वाद में गूढ होगा—आसक्त होगा ?

२९—अत (अपने उच्च गोत्र का) हर्ष न करे, न (नीच गोत्र के कारण) दूसरे किसी के प्रति क्रुपित हो ।

विचार कर जान सात—सुख सब जीवों को प्रिय है ।

यह देखने वाला पुरुष समित हो (किसी का दिल दुखाने वाला व्यवहार न करे) ।

३०—सजहा—अघत्त, घहिरत्त, मूयत्त,
काणत्त, कुटत्त, खुज्जत्त, वडभत्त, सामत्त,
सवळत्त, सह पमाण अणेगरुवाओ जोणीओ
सघायइ, विरुव-रूवे फासे पडिसवेयइ

३१—से अधुक्कमाणे हओवहर जाईमरण
अणुपरियट्टमाणे

३२—जीविय पुढो पिय इहमेगेसि माणवाण
त्तित्तवत्युममायमाणण

३०—अंधा होना बहता होना गुगा होना काना होना सूँटा होना, कुचड़ा होना घौना होना श्याम होना और कोढ़ी होना (—यह सब अभिमान का ही कारण है)। प्रमाद के कारण ही जीव विविध रूप—नाना योनियों में जन्म ग्रहण करता है और अनेक प्रकार के स्पर्शों का संवेदन करता है (—नाना प्रकार की यातनाओं को भोगता है) ।

३१—(जाति आदि मद से इस तरह हीनत्व प्राप्त होता है—) यह न समझने वाला (अभिमानी) पुरुष हतोपहता ही जन्म-मरण के चक्र में आवर्तन—भ्रमण—करता है ।

३२—इस ससार में क्षेत्र और गृहादि में माया—मोह करनेवाले मानवी को अपना जीवन पृथक् रूप से—विशेष रूप से—प्रिय होता है ।

३३—आरत्त विरत्त मणिकुण्डल सह-
हिरण्णेण इत्थियाओ परिगिङ्गति तत्थेव
रत्ता ।

न इत्थ तपो वा दमो वा नियमो वा
दिस्सइ

३४—सपुण्ण वाले जीविङ्गकामे छाल्प
माणे भूदे विप्परियासमुवेइ

३५—इणमेव नावर्कत्तति, जे जणा धुव-
वारिणो । जाइमरण परिन्नाय, खरे सकमण
दढे ।

३६—नत्थि फाल्स्स णागमो

३३—वे राज विरगि वस्त्र मणि कुण्डल स्वर्ग और स्त्री प्राप्त कर उन्हीं में आसक्त रहते हैं ।

उन्हें यहाँ तप, दम नियम—कुछ नहीं दिखाई देता ।

३४—जीवन की कामना करने वाला निरा बाल (अव्यागी) और मुढ़ मनुष्य भोगों के लिए प्रलाप करता हुआ विपर्यय भाव को प्राप्त होता है ।

३५—जो मनुष्य भ्रूवचारी है वे सांसारिक विषय भोगों की आकांक्षा नहीं करते । मुमुक्षु जन्म-मरण के स्वरूप को जानकर संयम में दृढ़ता पूर्वक विचरे ।

३६—काल के लिए कोई समय असमय नहीं । काल से कोई मुक्त है, ऐसा नहीं है ।

३७ सन्वे पाणा पियाऊया,
 सुहसाया दुक्खपडिक्खला,
 अप्पियवहा पियजीविणो,
 जीविउकामा,
 मन्वेसि जीविय पिय ।
 नाइवाइज्ज कचण

३८—मुणिणा हु एय पवेइय
 अणोहतरा एण नो य ओह सरित्तए,
 अतीरगमा एण नो य तीर गमित्तए,
 अपारगमा एण नो य पार
 गमित्तए,

३७—सर्व प्राणियों को आयु प्रिय है ।

सुख सब को सात्ताकारी—अनुकूल है और दुःख सब को प्रतिकूल ।

दध सब को अप्रिय है और जीवन सब को प्रिय ।

सर्व प्राणी जीने की कामना करते हैं ।

सब को जीवन प्रिय है ।

अतः किसी प्राणी की हिंसा मत करो ।

३८—मुनि ने यह कहा है—

निश्चय ही वे जो अनोर्ध्वतर हैं—क्रोध मान माया लोभ को नहीं तिरते वे भवसागर को नहीं तर सकते हैं ।

वे जो अतीरगम हैं—इन्द्रियों के विषयों को पारकर तीर नहीं पहुँचते वे संसार-सागर के तट पर नहीं पहुँच सकते ।

वे जो अपारज्जम हैं—राग द्वेष के पार नहीं पहुँचते वे संसार समुद्र का पार पाने में समर्थ नहीं हो सकते ।

३६—आयाणिज्ज च आयाय तमि ठाणे
ण चिट्ठइ । वितह पप्पज्जेयन्ने तमि ठाणमि
चिट्ठइ ।

४०—उहेसो पासगस्स णत्थि

४१—वाले पुण निहे कामसमणुन्ने
असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्ट-
मणुपरियट्ठइ

(श्र० १ अ० २ व० ३)

४२—तओ से एगया रोगसमुप्पाया
समुप्पज्जति ।

४३—जेहि वा सट्ठि सयसइ ते एव ण
एगया नियया पुब्बि परिवयति, सो वा ते
नियगे पच्छा परिवइज्जा

३९—अज्ञानी पुरुष तथ्य पाकर भी समय-स्थान में नहीं ठहरता। वह वितथ्य को पाकर असंयम स्थान में ठहरता है।

४०—पश्यक—द्रष्टा—के लिए उपदेश नहीं है।

४१—मूर्ख मोहग्रस्त और कामातक्त व्यक्ति का दुःख शामिल नहीं होता। वह दुःखी व्यक्ति दुःखों के ही आवत में अनुपरिदर्शित होता रहता है दुःखों के ही चक्र में जन्म मरण धारण करता रहता है।

४२—फिर उसके कदाचित् एक ही साथ उत्पन्न अनेक रोगों का प्रादुर्भाव होता है।

४३—जिनके साथ मनुष्य वास करता है वे ही निज के लोभ उसकी पहले निन्दा करते हैं अथवा वह ही पीछे उसकी निन्दा करता है।

४४—नाल ते वव ताणाए वा सरणाए वा,
तुमपि तेसि नाल ताणाए वा सरणाए वा

४५—जाणित्तु दुक्ख पत्तेय साय

४६—भोगा मे व अणुसोयति इहमेगेमि
माणवाण

४७—त परिगिज्ज्म दुपय चउप्पय अमि-
जुजिया ण ससिचियाण तिविहेण जाडवि से
तत्थ मत्ता भवइ, अप्पा वा चहुया वा, से
तत्थ गढिए चिट्ठइ भोअणाए

(अ० १ अ० २ उ० ३)

४४—रोग उत्पन्न होने पर वे तुम्हारी रक्षा करने में या तुम्हें ज्ञान देने में समर्थ नहीं होते, और न तुम ही उनका प्राण करने या उन्हें ज्ञान देने में समर्थ होते हो।

४५—एक दूसरे प्रत्येक को अपना-अपना जानवर (दुसरी के मोह से पाप छार्द मत कर)।

४६—इस संसार में मनुष्यों में एक-एक देती होते हैं जो केवल भोगों का ही अनुरोध—उही को वाञ्छा करते रहते हैं।

४७—किर वह द्विपद पशुप्यद को रस उन्हें काम में लगा तीन काण तीन योग से संघय करता है और संघित वस्तुओं की जो भी मात्रा होती है वोकी या अधिक उसमें वह भोग करने के लिए आसक्त रहता है।

४८—तओ से षगया विपरिसिद्ध समूय
महोयगरणं भवइ ।

४९—त पि से षगया दायया विभवन्ति,
अदत्तहारो वा से अचहरति, रायाणो वा से,
विलुपन्ति नस्सइ वा से विणस्सइ वा से,
अगारद्धाहेण वा से डम्मइ ।

५०—इय से परस्स अट्ठाण कूराणि कम्माणि
वाले पडुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विपरिया-
समुवेइ

५१—आस च छइं च विगिच धीरे । तुम
चेव त सहमाहट्ठु

४८—फिर कालान्तर में बची हुई विविध प्रकार की वह मींग सामग्री इकट्ठी हो जाने से वह प्रचुर द्रव्य राशि बाला हो जाता है ।

४९—उसको कभी दायदा—भागीदार बांट लेते हैं कभी उस सम्पत्ति को चोर चुरा लेते हैं, कभी राजा उसे छीन लेता है, कभी वह नाश का श्राव्य होती है, कभी वह विनष्ट हो जाती है और कभी घर में अग्नि लगने से वह जल जाती है ।

५०—इस प्रकार वह मूर्ख दूसरों के लिये झूठे कर्म करता हुआ उस दुःख से—धन के नाश होने से उत्पन्न दुःख से—मृदु धन विपर्यास को प्राप्त करता है ।

५१—हे धीर पुरुष । तू आशा और स्वच्छता का त्याग कर । तू इस कटि को रस कर अपने ही आप दुःखी होता है ।

१२—जेण सिया, तेण नो सिया, इणमेव
नावसुज्झति जे जणा मोहपाउड्डा

१३—धीभि लोए पव्वहिए
ते भो । वयन्ति 'एयाइ आययणाइ'
से दुक्खाए, मोहाए, माराए,
नरगाए नरगतिरिक्खाए ।

१४—सयय मूढे धम्म नाभिजाणइ,
उदाहु— वीरे अप्पमाओ महामोहे,
अलं कुसल्लस पमाएणां, सतिमरण

५२—जिससे—जिस घनादि से—दृष्टी इन्द्रियों को सुखानुभव होता है उससे दुम्हारी आत्मा को सुख नहीं होता ।

जो मोहप्रस्त है वे इस सत्य को नहीं समझते ।

५३—यह संसार धियों से प्रव्ययिन है—एक झुका है । विषयार्थो मनुष्य धियों को सुख का आवतन—घर—कहते हैं । है मनुष्यो ! यह सनका कदन सनके लिए दुःख मोह मृत्यु नाक तथा नाक-तिर्यच योनि का कारण होता है ।

५४—सत्य मूढ़ मनुष्य अपने धर्म को नहीं जानता । वीर पुरुषों ने महामोह में—कंचन कामिनी में—अप्रमा कहा है—प्रमाद न करने की शिक्षा दी है । अज्ञान से शान्ति—मोक्ष—और प्रणद से मृत्यु देव का सखा इस शरीर को मंगूरधर्मो जान कर कुशल पुरुष का प्रमाद

सपेहाए भेडरधम्म सपेहाए, नाल
 पास
 अल ते एएहिं
 एव पस्म मुणी ! महब्भय ।

५५—णाइवाइज्ज कचण

५६—एस वीरे पससिए, जे ण निड्विज्जइ
 आयाणाए

५७—न मे देइ ण कुप्पिज्जा
 धोव लद्धुं न तिसए,
 पडिसेहिओ परिणमिज्जा,
 एव मोण समणुवासिज्जासि

लोकविजय

से क्या प्रयोजन ? देव (दे उरु मरु मरु दे
वृष्णा शान्ति के लिए) पर्यट नहीं है।

हे पुरुष ! फिर तुम्हें इसी क्या प्रयोजन ?

हे मुनि ! इस प्रकार (भीतरे) उद्वेग है

५५ — (वृष्णा विजय मंगल के लिए) किसे इस
की हिंसा मत कर।

५६ जो पुरुष संयम में वीर और प्रज्ञाविद्य है।

५७ — मुझे नहीं देना कोप के मुझे
कोप—क्रोध—नहीं करना मुझे, मुनि दाता की निन्दन है।
मुनि दाता की निन्दन है। लौट जाय।
लौट जाय। इस प्रकार की—सम्यक प्रकार वास्तव है।

१८—जमिण विरून्ख्वेहिं सत्येहिं लोगसस
 कम्मसमारम्भा कज्जति तज्जहा—अप्पणो से
 पुत्ताण धूयाण सुण्हाण नाईण धाईण राईण
 दासाण दासीण कम्मकराण कम्मकरीण
 आपसाए पुढो पहेणाए सामासाए पायरासाए,
 सनिहिसनिचओ कज्जइ ।

इहमेगेसि माणवाण भोयणाए

१९—समुद्धिए अणगारे आरिए
 आरियपन्ने आरियदसी अयसधिति अदक्खु

५८—लोगों द्वारा विविध शस्त्रों से कर्म समारम्भ किये जाते हैं। जैसे कि मनुष्य अपने लिए, पुत्र पुत्रियों पुत्रवधुओं आत्मीय जनों धात्रियों राजा दास दासी कर्मकार कर्मकरी और अतिथियों के लिए अपने भिन्न २ सम्वन्धियों के भेजने के लिए तथा शाम और प्रातःकाल के भोजन के लिए सन्निधि और सन्निचय करता है।

(इस तरह) सत्तार में कितने ही ऐसे मनुष्य हैं जिनके भोजन के लिए (कर्म समारम्भ किये जाते हैं)।

५९—संयम में समुत्थित—उद्यमी आर्य आर्यव्रज और आर्यदर्शी अनगार यही सन्धि है—निर्जीवि आहार पानी आदि पाने का ठिकाना है—यह देखनेवाला हो !

६०—से नाईए नाश्यावए न समणुजाणइ
 सव्यामगघ परिन्नाय, निरामगघो
 परिहवए ।

६१—अदिस्समाणे कयविहएसु,

सेण किणे न विणावए किणत न
 समणुजाणइ

६२—से भिक्खू कालन्ने षालन्ने मायन्ने
 खेयन्ने खणयन्ने विणयन्ने सत्तमयपरसमयन्ने

६०—वह अकल्पनीय आहार ग्रहण न करे न करावे और न करनेवालों की अनुमोदना करे ।

सर्व अप्रह्णीय को जानकर ग्रहणीय पर जीवन चलावे ।

६१—अनगार क्रय विक्रय में अदृश्यमान् हो—उससे दूर रहे ।

वह न स्वयं खरीदे न दूसरे से खरीदवाये और न कोई खरीदता हो उसे अच्छा जाने ।

६२—जो मिथु कालज्ञ (मिथु के समय को जानने वाला) बलज्ञ (मिथु देनेवाले की शक्ति को जानने वाला) मात्रज्ञ (मिथु के प्रमाण को जाननेवाला) दणज्ञ (मिथु-प्राप्ति के दण—अदत्त—को जानने वाला) विनयज्ञ (मिथु के नियमों को जाननेवाला)

भावन्ते परिगह् अममायमाणे कालाणुद्वाइ
अपडिण्णे, दुहओ छेत्ता नियाइ ।

६३—वत्य पडिगाह कबल पायपुंछण
उगहण च कढासण एणमु चैव जाणिज्जा

६४—उद्वे आहारे अणगारो माय
जाणिज्जा

लामुत्ति न मज्जिज्जा

अलामुत्ति न सोइज्जा

स्वसमयपरसमयज्ञ—(स्व सिद्धान्त और पर-सिद्धान्त को जाननेवाला) और मावज्ञ (दूसरे के अभिप्राय को जाननेवाला) होता है, जो परिग्रह में—भोगोपभोग सामग्रो में—ममता नहीं करनेवाला होता है जो यथा काल अनुष्ठान करनेवाला होता है, जो प्रतिज्ञ नहीं होता वह राग द्वेष को छेद कर मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ता है ।

६३—भिक्षु वस्त्र प्रतिग्रह—पात्र कम्बल पाद पंघनक—रजोहरण अवग्रह—स्थान कटासन—शय्या और आसन—गृहस्थों से याच ले ।

६४—आहार लब्ध होने पर अनगार मात्रा—कितना लेना यह—जाने ।

भिक्षु भिक्षा मिलने पर गर्व न करे ।

न मिलने पर सोच न करे ।

यहुपि लद्ध न निहे
 परिग्गहाओ अप्पाण अयसकिञ्जा
 अण्णहा ण पासए परिहरिञ्जा
 एस मग्गे आयरिएहि पवेइए
 जहित्थ कुमले नोयलिपिञ्जासि

६५—कामा दुरतिक्रमा, जीविय दुष्पट्टि-

यूदग

कामकामी खलु अय पुरिसे,
 से सोयइ जूरइ तिप्पइ पिट्टइ परितप्पइ

६६—आययचक्खू लोगधिपस्सी लोगस्स
 अहोभाग जाणइ उद्ध भाग जाणइ तिरिय
 भाग जाणइ

अधिक मिलने पर संग्रह न करे।

वह परिग्रहसे आत्मा को दूर रहे।

अन्यथा दैवता हुआ (मूर्ख) परिग्रह करे।

यह मार्ग आर्यो लोकेष्टो हर लक्षित है।

इसमें कुशल पुरुष कर्मकल्प से लिप्त नहीं होता।

६५—कामनार्थं दुर्पितम् है—क्या धर्म पला
दुष्कर है। यह जीवन ब्रह्म नहीं जा सकता।

यह कामकामी—कामनी की शक्तता करिन्ता—
पुरुष निश्चय ही शोक कल्प है, क्षिप्त करता है मर्दाप
से भट हो जाता है तथा दुःख शी स्मृत होता है।

६६—जो आयतवद्—~~लोक~~ और लोकदर्शी—
लोक की विभिन्नता की दृष्टि है वह लोक के
अधोभाग उर्ध्वभाग हो विभिन्नता को उनके
स्वरूप को—जानता है।

६७—गङ्गिण्ये लोए अणुपरियट्टमाणे

६८—सधिं विञ्जता इह मधिण्हि
एस वीरे पससिए जे बद्धे पडिमोयए

६९—जहा अतो तथा धाहिं
जहा धाहिं तथा अतो
अतो-अतो पृथदेहतराणि पासइ
पुडोबिसवताइ पडिए पडिलेहाए

७०—से मइम परिन्नाय मा य हु लाल
पघासी

६७—वासना में गुद मनुष्य इस संसार में परिभ्रमण करते हैं ।

६८—इस मनुष्य-जन्म में संधि जानकर—उदार का अवसर जानकर—जो कर्मों से बद्ध आत्मप्रेतों को मुक्त करता है वही वीर और प्रशंसा का पात्र है ।

६९—यह शरीर जैसा अन्दर से असार है वैसा ही बाहर से असार है । और जैसा बाहर से असार है वैसा ही अन्दर से असार है ।

ज्ञानी देह के अन्दर की अशुचि तथा बाहर साव करने देह के भिन्नभिन्न मल-द्वारों को देखता है । पण्डित यह सब देख शरीर के वास्तविक स्वरूप को समझे ।

७०—बुद्धिमान् यह जानकर तार घुमनेवाला न हो—त्यागे हुए भोग पदार्थों का प्रत्याशी फिर न उनकी कामना करनेवाला न हो ।

मा तेसु तिरिच्छमापाणमावायए

७१—कासकासे खलु अय पुरिसे बहुमाई

कडेण मूढे, पुणो त करेइ लोह

वेर बहुइ अप्पणो

जमिणं परिकहिज्जइ इमस्स चेव

पडियूहणयाए

अमरायइ महासड्ढी

अट्टमेय तु पेहाए अपरिष्णाए कदइ

से न जाणह जमहं वेमि ।

वह अपनी भोग विमुक्त आत्मा को फिर से मोयों में
आसक्त न होने दे।

७१—निश्चय ही भोग और कषाय में आसक्त मन
अत्यन्त मायावी होता है।

अपने ही किये से मूढ़ मनुष्य पुन विपत्तियों का
लोभ करता है।

विषयलोभी मनुष्य अपनी उन्नति के प्रति ही
बढ़ाता है।

यह जो बार-बार कहा जाता है कि तपन की वृद्धि
के लिए कहा जाता है।

विषयों में अत्यन्त रुद्धा तपस्या मनुष्य समाप्त
आचरण करता है।

वह बाद में अपने को उन्नत-इच्छन्त देख आण
का मार्ग नहीं जानता हुआ किन्तु रुद्धन करता है।

इसलिए जो मैं कहता हूँ उसे सुनो।

७२—तेश्च्छ पडिए पययमाणे से हता
 द्वित्ता भित्ता लुपइत्ता विलुपइत्ता उद्वइत्ता,
 अक्वड करिस्सामित्ति मन्नमाणे

जस्सवि य ण करेइ

अल वालस्स सणेण

जे वा से कारइ वाले,

न एव अणगारस्स जायइ

(श्रु० १ अ० २ उ० ५)

७३—से त मनुज्जमाणे आयाणीय
 समुट्ठाय तम्हा पावक्म्म नेव कुज्जा न
 कारवेज्जा

७२ कई अपने को चिकित्सा में दक्षिण करने हैं। पर वे किसी ने नहीं किया वह कर्मण्य ऐसा कर्त्तव्य करने छेदन भेदन, प्राक्छेदन छेदने की प्रशस्त्य करते हैं।

ऐसे चिकित्सक जिसकी चिकित्सा करने है (उमका घुरा होता है)।

ऐसे मूर्ख की संगत से क्या लाभ?

जो ऐसे चिकित्सक से चिकित्सा कराता है वह भी मूर्ख है।

सच्चे अनगार की चिकित्सा देने नहीं होती।

७३—वह आदिय की—कीर्त्त की—समझ उसमें समुत्थित हुआ है। इति स्थ पानकर्म न कर और न दूसरे से कर्त्तव्य।

७४—सिया तथ णायर विप्परामुसइ
छसु अन्नयरमि कप्पइ

७५—सुहट्ठी लालप्पमाणे, सण्ण दुक्खेण
मूटे विप्परियासमुवेइ

७६—सण्ण विप्पमाणेण पुढो वय पकुळवइ

७७—जसिमे पाणा पव्वहिया

७८—पडिलेहाए नो निकरणयाए, एस
परिन्ना पवुच्चइ कम्मोवमती

७९—ज ममाइयमइ जहाइ से चयइ

७४—कदाचित् कोई छ में से किसी एक काय का समारम्भ करता है वह छ कायों में से प्रत्येक का आरम्भ करनेवाला माना जाता है।

७५—विषय सुख का अर्थी मनुष्य सावध कार्य करता हुआ स्वयंकृत पाप कर्म से मुक्त बन विपर्यय को प्राप्त होता है।

७६—जीव अपने ही प्रमाद से भिन्न भिन्न जन्म जन्मान्तर करता है।

७७—जिसमें ये प्राणी व्यधित हैं (वह संसार स्वयंकृत ही है।)

७८—यह जानकर मुमुक्षु प्रमाद न करे। इसे ही परिक्षा—विवेक कहा है और इसी से कर्मोपशान्ति होती है।

७९—जो ममत्त्व बुद्धि को छोड़ता है वह परिग्रह को

ममाङ्ग्य । से हु विद्वपद्दे मुणी, जस्स नत्थि
ममाङ्ग्य

८०—त परिन्नाय मेहावी विइत्ता लोग
वता लोगसन्न से मइम परिकमिज्जासि त्ति
वेमि

८१—नारु सहरई धीरे
धीरे न सहरई रत्ति
जम्हा अविमणे धीरे
सम्हा धीरे न रज्जइ

८२—सद्दे फासे अहियासमाणे निर्ब्बिद
नदि इह जीवियस्स

छोड़ता है। जिसके परिग्रह नहीं हैं वही मुनि दृष्टिपथ को—ज्ञानादिक मोक्षपथ को—देसनेवाला है।

८०—यह जानकर मेधावी (ममत्त्व बुद्धि को छोड़े)। बुद्धिमान लोक के स्वरूप को जान कर सदा लोकसंज्ञा को छोड़कर संयम में पराश्रम करे। यही मैं कहता हूँ।

८१—वीर पुरुष संयम में अरति को सहन नहीं करता और न असंयम में रति को सहन करता है। चूँकि वीर पुरुष संयम में अन्यमनस्क नहीं होता अतः असंयम में भी अनुरक्त नहीं होता।

८२—शब्द और स्पर्श को अच्छी तरह सहन करता हुआ मुमुक्षु इस संसार में असंयम-जीवन में आनन्द मात्र को घृणा को दृष्टि से देखे।

८३—मुणी मोण समायाय, धुणे
फम्मसरीरा

८४—पत छह सेवति, घीरा सम्मत्त-
दसिणो

८५—एस ओहंतरे मुणी तिण्णे मुत्ते विरप
वियाहिए त्ति येमि

८६—दुव्वसुमुणी अणाणाए, सुच्छए गिलाह
वत्तए

(अ० १ अ० २ उ० ६)

८३—मुनि मौन को—असंयम से सम्पूर्ण उदासीन भाव को—ग्रहण कर कर्म शरीर को धुन डाले ।

८४—समदर्शी वीर प्रान्त—नोरस और रुद्ध भोजन का सेवन करते हैं ।

८५—ऐसे ही मुनि संसार सागर को तिरते हैं । वे ही उत्तीर्ण मुक्त और विरत कहलाते हैं । ऐसा मैं कहता हूँ ।

८६—अनाशा से चलनेवाला—स्वच्छन्दता से वर्तन करनेवाला—मुनि मोक्ष-गमन के योग्य नहीं होता ।

ऐसा तुच्छ मुनि यथार्थ प्रकृषणा करने में हिचकिचाता है ।

८७—एस धीरे पससिण

अच्चेइ लोयसजोग

एस नाए पवुच्चइ

८८—अ दुक्पय पवेश्य इह माणयाण तस्स
दुक्खस्स कुसला परिन्नमुदाहरन्ति

८९—इइ कम्म परिन्नाय सञ्चसो

५७— (जो मुनि आज्ञा के अनुसार वर्तन करता है वह सिद्धान्त की शुद्ध परूपणा करने में नहीं हिचकिचाता ।) ऐसा मुनि ही वीर है और वही प्रशंसित है ।

मुनि लोकसंयोग को—धन आदि बाढ़ और राग द्वेषादि अन्तर ममत्त्व को—अतिक्रम करता है ।

लोकसंयोग का अतिक्रम करना ही न्याय—सन्मार्ग—मुमुक्षुओं का आचार—कहा गया है ।

५८—इस ससार में मनुष्यों को जो दुःख कहा गया है कुशल पुरुष उस दुःख को छ परिष्ठा द्वारा जानकर प्रत्यास्थान परिष्ठा द्वारा उसका त्याग करते हैं ।

५९—यह दुःख स्वकर्मकृत है यह जानकर सर्वश—करने कराने और अनुनोदन रूप से आसन्न द्वार—दुःख उत्पत्ति के कारण मिथ्यात्व अवत प्रमाद, कषाय और योग का निरोध करे ।

६०—जे अणन्नदसी से अण्णारामे
जे अण्णारामे से अणन्नदसी

६१—जहा पुण्णस्स कथइ तहा तुच्छस्स
कथइ
जहा तुच्छस्स कथइ तहा पुण्णस्स
कथइ

६२—अवि य हणे अणाइयमाणे
इत्थ पि जाण सेयति नत्थि

९०—जो अनन्यदर्शी है—जिसकी जिन द्वारा बताए तत्त्वार्थ के सिवाय अन्यत्र दृष्टि नहीं—वह अनन्यात्मी है—वह परमार्थ के सिवा अन्यत्र आराम - विग्राम—रमण नहीं करता। जो अनन्यात्मी है—परमार्थ के सिवा अन्यत्र आराम नहीं करता—वह अनन्यदर्शी—सम्यक् दृष्टि है।

९१—परमार्थ द्रष्टा जिस प्रकार पुण्यवान् को धर्म का उपदेश देते हैं उसी प्रकार सुष्ठ को भी। और जिस प्रकार सुष्ठ को धर्म कहते हैं उसी प्रकार पुण्यवान् को भी।

९२—सम्भव है अपने को अनादस मान कोई साधु को पीटे।

ऐसा भाव उत्पन्न करनेवाली धर्म-कथा में श्रेय नहीं है यह जानो।

६३—केय पुरिसे क च नए

६४—एस बीरे पससिए, जे बट्टे परिमोयए

६५—उड्ड अह तिरिय दिसासु
से सब्बओ सब्ब परिन्नाचारी
ण लिप्पइ छणपण बीरे

६६—से मेहावी अणुग्घायणखेयण्णे
जे य यन्धपमुक्ख मन्नेसी

६७—कुसले पुण नो बट्टे नो मुक्के

६८—से ज च आरभे ज च नारभे

१३—यह पुरुष कौन है जिसको नमस्कार करता है (यह जान कर उपदेश दो) ।

१४—वही वीर है और प्रशंसित है जो कर्मों से बंधे हुए जीवों को मुक्त करता है ।

१५—उर्ध्व, अधो और तिर्यक दिशा में जो भी त्रस और स्वायत्त प्राणी हैं मुमुक्षु उनके प्रति सर्वकाल में सर्वपरिशाचारी होता है—विशिष्ट ज्ञान और संवत्पूर्वक वर्तन करता है । ऐसा वीर हिसा में लिप्त नहीं होता ।

१६—जो पुरुष बन्धन से मुक्त होने का उपाय सोचता है वही मेधावी और कर्मों को विदीर्ण करने में निपुण है ।

१७—कुशल पुरुष न लो बद्ध है और न मुक्त ही ।

१८—सत्त्वज्ञ पुरुषों ने जो किया वही साधक करे ।
उन्होंने जो नहीं किया, साधक भी उसे न करे ।

अणारद्ध च न आरभे

६६—छण छर्णं परिण्णाय

लोगसन्न च सव्वसो

(सु० १ अ० २ उ० ६)

जो हमिनी दाता अनाथ रहा है उसे लज्जक
नहीं।

१९- शिता और शिता के बालों को लदा होने
संज्ञा को जानकर उनका लक्षण हटा करे।

११—पासिय आउरपाणे अप्पमत्तो
परिव्वए

१२—मता य मइम पास

१३—आरभज दुक्खमिणति णच्चा

१४—माई पमाई पुण एइ गम्भ

१५—उवेहमाणो सहस्सेसु उज्जु
माराभिसकी मरणा पमुच्चइ

१६—अप्पमत्तो कामेहि
उवरओ पायकम्मेहि
धीरे आयगुत्ते खेयन्ने

११—कष्ट से आनुर प्रणियों को देखकर अस्मत्त हो
संयम प्रह्न कर ।

१२—हे मतिमान् विचार कर सब देख ।

१३—यह सारा दुख आरम्भज—हितारमक कायों
से ही उत्पन्न—हे यह जानकर उनसे निवृत्त हो ।

१४—मायावी और प्रमादी मनुष्य पुन-पुन गर्वावास
करता है ।

१५—शुभ और क्य आदि विषयों में उदासीन
सरल और जन्म-मरण से डरनेवाला पुरुष मृत्यु से
घुटकारा पा जाता है ।

१६—जो शब्द रूपदि काममोगों में अग्रभादी होता
है जो पाप कर्मों से उपरत निवृत्त होता है वही वीर
गुहात्मा और सिद्ध है ।

१७—जे पञ्चजायसत्यस्त खेयणो-
 से असत्यस्त खेयणो
 जे असत्यस्त खेयणो
 से पञ्चजाय सत्यस्त खेयणो

१८—अकम्भस्त वयहारो न विजइ

१९—कम्भुणा उवाही जायइ

२०—कम्भ च पडिलेहाए
 कम्भ मूल च छण पडिलेहिय
 सब्ब समायाय दोहि अन्तेहि
 अदिसमाण परिक्कमिजासि

२१—विइचालोग वता लोगसन्नं से मेहाधी

(अ० १ अ० ३ वृ० १)

१७—जो इच्छा सिद्धी की कामना से उत्पन्न
 हिता की जानता है वह धर्म की जानता है। जो
 धर्म की जानता है वह इच्छा सिद्धी की कामना से
 उत्पन्न हिता की जानता है।

१८—कर्म छिन्न जिन के व्यर्थ—साधारण में उन्मा
 मानसि क्य व्यर्थ—नहीं होता।

१९—कर्म से ही उत्पत्ति उत्पन्न होती है।

२०—कर्म के स्वल्प को जानकर, कर्म की उद्द
 हिता की जानकर सब उपाय प्रकृत कर लेनी अती—
 सा-देव—से दूर रह मैथिली संवत्स में पाठ्यमा करे।

२१—लोक के स्वल्प की जान जो लोक-संज्ञा का
 परिचय करते हैं, वे मैथिली हैं।

२२—जाइ च बुद्धि च इहऽज्ज पासे,
 भूएहि जाणे पडिलेह साय ।
 तम्हाऽतिविज्जे परमति णच्चा,
 सम्मत्तदसी न करेइ पाव ॥

२३—उम्मुच पाव इह मच्चिएहि,
 आरम्भजीवी उभयाणुपस्सी ।
 कामेसु गिद्धा निचय करति,
 ससिच्चमाणा पुनरिति गम्भ ॥

२४—अवि से हासमासज्ज,
 हता नदीति मन्नई ।
 अल घालस्स सरोण,
 नेर वड्ढेइ अप्पणो ॥

२२—हे आर्य ! संसार में जन्म और जरा को देख ।
विचार कर जान—सब प्राणियों को सुख प्रिय है ।
इसोल्प सत्वज्ञ सम्यक्दृष्टि परमाय को जान पाप
कर्म नहीं करता ।

२३—इस संसार में मनुष्य के साथ मोह पाश का
छेदन कर । गृहस्थ हिंसाजोवी और इस लोक सधा
पर लोक में विषय सुखों को कामना करनेवाला होता है ।
काम-भोग में गृह जीव कर्मों का संचय करते हैं । और
जो कर्मों का संचय करते हैं वे बार-बार गर्भावास करते
हैं ।

२४—पापी मनुष्य हंसी विनोद के वशीभूत हो
जीवों का हनन करता है और इसे क्रीड़ा समझ कर
आनन्द मानता है । ऐसे अज्ञानी मनुष्य का संसार
उचित नहीं । वह केवल अपना वेर ही बढ़ाता है ।

२५—तम्माऽतिविज्ञो परमति णच्या,
 आयकदसी न करेइ पात्र ।
 अमा च मूल च विगिच धीरे,
 पलिच्छिदियाण निफम्मदसी ॥

२६—एम भरणा पमुच्चड

२७—से ह्नु दिट्ठभए मुणी

२८—लोगसी परमदसी विवित्तजीवी
 उवसते समिए सहिए सया जये
 कालकखी परिठ्वए

२५—आत्मकदर्शी विद्वान्—पापों से भय खानेवाला तत्त्वज्ञ—परमार्थ को जान कर पाप नहीं करता। हे धीर पुरुष। तू मूलकर्म और अग्र कर्म को आत्मा से विच्छिन्न कर। इस तरह संसार—बुद्ध के मूल और अग्र को छिन्न कर तू निष्कर्मदर्शी—निष्कर्म आत्मा को देखनेवाला—बन।

२६—यह पुरुष—मूलकर्म और अग्रकर्म को छिन्न करनेवाला पुरुष—मरण से मुक्त हो जाता है।

२७—वही मुनि संसार के भय को देखने वाला होता है।

२८—लोक में परमाद्यदर्शी, एकान्तसेवी उपशान्त समितियुक्त ज्ञानवान् मुनि संयम में सदा यत्नवान् ही काल को अपेक्षा करता हुआ जीवन वहन करे।

२६—बहुं च खलु पाव कम्म पगड

सच्चमि धिइ कुब्बहा

३०—एत्थोवरए मेहावी सच्च पाव कम्म

मोसइ

३१—अणेगचित्ते खलु अय पुरिसे

३२—से अण्णवहाए अण्णपरियावाए

अण्ण परिग्गहाए जणवयवहाए

जणवयपरियावाए जणवयपरिग्गहाए

३३—से केयण अरिहए पूरित्तए

३४—आसेवित्ता एतमहु इच्चवेगे समुद्धिया

२९—निरचय हो मैंने आसक्तिवश बहुत पाप कर्म किये हैं—ऐसा सोचकर सत्य में धृति कर—इड़ हो।

३०—सत्य में रत बुद्धिमान् मनुष्य सर्व पाप बर्णों का हय कर देता है।

३१—निश्चय ही मनुष्य बहुचित्तवान् है—वह विविध कामनाएँ करता रहता है।

३२—इन दुष्पूर कामनाओं की पूर्ति के लिये वह दूसरों को मारने दूसरों को दुःख देने उन्हें अपने अधीन काने जनपदों को मारने जनपदों को परित्याग देने और जनपदों को अपने अधीन करने के लिए तैयार रहता है।

३३—जो इस धित की कामनाओं को पूर्ण करने की इच्छा करता है वह चलनी को जल से भरना चाहता है।

३४—इन सब भोग्य वस्तुओं का आसवन करनेवाले

तम्हा त विइय नो सेवे निस्सार
पासिय नाणी

३५—उवधाय चवण णच्चा,
अणण्ण घर माहणे ।

३६—से न छणे, न छणायए, छणन
नाणुजाणइ ।

३७—निब्बिद नदिं, अरए पयासु

३८—अणोमदसी
निसण्णे पावेहिं कम्मेहिं ।

३९—कोहाइमाण हणिया थ वीरे ।
लोभरस पासे निरय महन्त,

भी कई उहें छोड़ संयम के लिए उद्यत हुए हैं। अतः हानी उहें निस्सार देल उनका दूसरी धार सेवन न करे।

३५—अन्य प्राणियों की तो बात ही क्या, देखो तक के सपपात और श्रयवन—जन्म और मरण—जान कर मुनि। अनन्य में—सयम में—विचरण कर।

३६—मुमुक्षु किसी जीव की हिंसा न करे न करावे और न हिंसा करते हुए का अनुमोदन करे।

३७—दिवयानन्द से घृणा कर। स्त्रियों में आसक्त मत हो।

३८—मुमुक्षु उच्चदर्शी हो और पाप कर्मों से विरत हो।

३९—वीर पुरुष अति क्रोध और मान का हनन करे। वह लोभ का फल महान् नरक देखे। अतः वीर

तम्हा य वीरे विरए वहाए,
 छिदिञ्ज सोय लहुभूयगामी ॥

४०—गथ परिष्णाय इहऽञ्ज । घीरे,
 सोय परिष्णाय चरिञ्ज दते ।
 उन्मञ्ज लद्धु इह माणवेहि,
 नो पाणिण पाणे सभारभिञ्जासि ॥
 (श्रु० १ अ० ३ उ० २)

४१—सधि लोयस्त जाणित्ता

४२—आयओ बहिया पास
 तम्हा न हता न विघायए

पुरुष पाप का फल देख वृत्तियों से हलका बन बध—हिंसा से विरत हो और कर्म-स्रोत का ऐद कर सके ।

४०—धीर पुरुष ग्रन्थि और स्रोत—संसार प्रवाह—के स्वरूप को जानकर आज ही से इन्द्रिय-दमन करता हुआ विचरे । उमज्जन प्राप्त कर धीर पुरुष को इस मनुष्य जीवन में प्राणियों के प्राणी का समारम्भ—ह्वन—नहीं करना चाहिए ।

४१—मनुष्य नर-भव को अदसर जानकर (प्रमाद न करे) ।

४२—दूसरे प्राणियों को आत्मतुल्य देख ।
अतः किसी भी प्राणी की हिंसा न कर, न दूसरे से करा ।

४३—जमिण अन्नमन्नवितिगिच्छाए
पडिलेहाए न करेइ पाव बम्म
कि तत्थ मुणी कारण सिया ?

४४—समय तत्थुवेहाए अप्पाण विप्पसायए

४५—अणन्नपरम नाणी, नो पमाए
कयाउरि

४६—आयगुत्ते सया वीरे, जायामायाइ
जावए

४७—विराग रुवेहिं गच्छिज्जा
महया सुदुएहि य

न आगति को जान कर जिसने दोनों ही
 १७ और द्वेष—को छोड़ दिया है वह सारे लोक
 १८ द्वारा चिन्त नहीं होता विद्व नहीं होता दग्ध
 १९ और न निहत्त होता है ।

२—इस जीव का अतीत क्या था ? इसका भविष्य

३—इस मृत और भविष्य का कितने ही विचार
 ४—नहीं करते ।

कितने ही कहते हैं इस संसार में जीव का जो
 ५ लीत था वही भविष्य है ।

संशयगत अतीतार्थ को—अतीत के अनुसार भविष्य
 ६ होने की बात को या भविष्यार्थ को—भविष्य के अनुसार
 ७ अतीत होने की बात को स्वीकार नहीं करते । अतीत या
 ८ भविष्य कर्मों के अनुसार ही होता है यह जान कर
 ९ पवित्र आचरणयुक्त महर्षि कर्मों को धुन कर ब्रह्म
 १० कर डाले ।

४८—आगइ गइ परिणाय दोहिवि
 अतेहि आदिस्समाणेहि से न
 द्विज्जइ, न भिज्जइ, न डज्जइ, न
 हमइ कचर्णं सब्बलोए

४९—अवरेण पुब्बि न सरति एगे,
 किमस्स तीय ? किं वा आगमिस्सं ?
 भासति एगे इह माणवाओ,
 जमस्स तीय त्तागमिस्स ॥
 नाईयमट्ट न य आगमिस्स,
 अट्ट नियच्छति त्तागया उ ।
 विट्ठयकप्पे एयाणुपस्सी,
 निज्ज्कोसइत्ता खवगे महेस्सी ॥

४८—गति आगति को जान कर जिसने दोनों ही अन्तों—राग और द्वेष—को छोड़ दिया है वह सारे लोक में किसी के द्वारा पित्र नहीं होता विद्व नहीं होता दग्ध नहीं होता और न निहत होता है ।

४९—इस जीव का अतीत क्या था ? इसका भविष्य क्या है—इस मृत और भविष्य का कितने ही विचार ही नहीं करते ।

कितने ही कहते हैं इस संसार में जीव का जो अतीत था वही भविष्य है ।

तथागत अतीतार्य को—अतीत के अनुसार भविष्य होने की बात को या भविष्याद्य को—भविष्य के अनुसार अतीत होने की बात को स्वीकार नहीं करते । अतीत या भविष्य कर्मों के अनुसार ही होता है यह जान कर पवित्र आचरणयुक्त महर्षि कर्मों को धुन कर छ्ये कर डाले ।

१५—पुरिस्ता । सद्यमेव समभिजाणाहि
मच्चस्म आणाए से उवट्टिए मेहावी
मार तरड ।

१६—सहिओ धम्ममायाय सेय
समणुपस्सइ

१७—दुहओ जीवियस्स परिवदणमाणण
पूयणाए जसि एणे पमायति

१८—सहिओ दुक्खमच्चत्ताए पुट्टो नो
क्कमाए ।

५५—हे पुरुष ! सत्य को ही अच्छी तरह जान ।
जो सत्य की आज्ञा में उपस्थित होता है—जो सत्य
की आराधना में उद्यमी होता है वह मेघावी मार—
मृत्यु को तर जाता है ।

५६—सत्य से युक्त पुरुष धर्म को ग्रहण कर श्रेय
को अच्छी तरह देखता है ।

५७—राग और द्वेष वश मनुष्य इस जीवन के लिए
एवं प्रशंसा सम्मान और पूजा पाने के लिए पाप कर्म
करता है और ऐसा करने में कितने ही प्रसन्नता का
अनुभव करते हैं ।

५८—सत्य युक्त मनुष्य किसी भी दूत से स्पृष्ट होने
पर न घबराये ।

जे अणासवा ते अपरिस्सया
 जे अपरिस्सया ते अणासवा
 एए पण सवुङ्गमाणे
 लोय च आणाए अभिसमिच्च
 पुढो पवेश्य

६—आधाइ नाणी इह माणवाण ससार-
 पडिवण्णाण सवुङ्गमाणाण विन्नाण-
 पत्ताण

१०—अट्टाविसता अदुधा पमत्ता

वाले हैं। जो परिस्रव हैं—कर्म-प्रवेश को रोकने के उपाय हैं वे ही (उन्मुक्त अवस्था में) आस्रव हैं—कर्म प्रवेश के द्वार हैं। जो अनास्रव हैं—कर्म प्रवेश के कारण नहीं हैं वे भी (अपनाये बिना) सवर—कर्म प्रवेश के रोकनेवाले—नहीं होते। जो आस्रव—कर्म प्रवेश के कारण हैं—वे ही (रोकने पर) अनास्रव होते हैं।

पृथक् पृथक् प्रवेदित इन पदों को समझनेवाला लोक को शीर्षकर की आज्ञा से जान कर आस्रव से निवृत्त हो और सवर में प्रवृत्ति करे।

९—ज्ञानी पुरुष संसारी होने पर भी जो मनुष्य सवुद्ध और विज्ञान प्राप्त—विवेकशील होते हैं, उन्हें यह धर्म कहते हैं।

१०—हे आर्त और प्रमादी मनुष्यो ! मैं तुम्हें यथार्थ

अहासच्चमिण तिवेमि
 नाणागमो मच्चुमुहस्त अत्थि
 इच्छापणीया वकानिकेया
 कालगहीया निचयनिविद्धा
 पुढो पुढो जाइ पकप्पयति

११—इहमेगेसि तत्थ तत्थ स्थगो भवइ
 अहोववाइए फासे पडिसवेयति
 चिट्ठ कम्मेहि कूरेहि चिट्ठ
 परिचिट्ठइ अचिट्ठ कूरेहि कम्मेहि
 नो चिट्ठ परिचिट्ठइ

सच्ची बात कहता है। मृत्यु के मुह में पड़े हुए प्राणी को मृत्यु न आये ऐसा नहीं हो सकता। जो वासनाओं के वश हैं असमय के निवास हैं कालगृहीत हैं—समय समय पर पश्चात्पद हैं और जो रात दिन संग्रह करने में निविष्ट हैं वे भिन्न भिन्न जातियों में—जीव-योनियों में जन्म-जमान्तर करते हैं।

११—जगत् में कितने ही लोगों को मानो नरकादि से गाढ़ परिचय-सा होता है। वे बार-बार पाप कम कर नरक पशु आदि योनियों में होनेवाले स्पर्श—दुःखों का प्रतिसंवेदन करते रहते हैं।

अत्यन्त क्रूर कर्म से प्राणी अत्यन्त वेदनावाली योनि में उत्पन्न होता है। जो अत्यन्त क्रूर कर्म नहीं करता वह उतनी वेदनावाली योनि में नहीं जाता।

१०—एगो वयति अदुवावि नाणी
नाणी वयति अदुवावि एगो

१३—आयति केयावती लोयसि समणा
य माहणा य पुढो रिधाय वयति
से दिट्ठ च णे मुय च णे मय
च ण विण्णाय च णे उट्ठ अह
तिरिय दिसामु सव्वओ सुपडि-
लेहिय च णे—सव्वे पाणा मव्वे
जीवा मव्वे भूया मव्वे मत्ता
हन्तव्वा अज्जावेयव्वा परिया-
वेयव्वा परिघेत्तव्वा उदवेयव्वा,
इत्थन्नि जाणह नत्थिथ दोसो
अणारियवयणमेय

१२—जो श्रुतकेवली बहते हैं वह ही केवलज्ञानी कहते हैं। जो केवलज्ञानी कहते हैं वही श्रुतकेवली कहते हैं।

१३—इस संसार में अनेक श्रमण ब्राह्मण भिन्न ही तर्क वितर्क करते हुए कहते हैं—“हमने देखा सुना, मनन किया विशेष भाव से जाना और ऊर्ध्व अधो व तिर्यक दिशा में सब प्रकार से पर्यालोचना की है कि किसी भी प्राणी किसी भी जीव किसी भी भूत किसी भी सत्त्व को मारने उस पर हुकूमत करने उसे संताप देने उसे दासदासी रूप में अधीन रखने और उसके प्रति उपद्रव करने में कोई दोष नहीं है - यह तुम जानो।’

पर यह अनायीं का कथन है।

पुञ्च निकाय समर्थ पत्तेय पत्तेय
 पुञ्चिस्सामि, हभो पवाङ्गया । कि
 मे सार्यं दुक्कअ असाय ? समि-
 या पडियण्णे यावि एव घूया—
 सव्वेसिं पाणाण सव्वेसिं भूयाण
 सव्वेसिं जीवाण सव्वेसिं सत्ताण
 असाय अपरिनिञ्चाण महब्भय
 दुक्कअ त्ति वेमि

तथ जे आरिया ते एव वयासी
 —से दुद्धि च भे दुम्मय च भे
 दुग्मय च भे दुविरणाय च भे उद्ध
 अह तिरिय दिसासु सव्वओ
 दुप्पडिलेहिय च भे, ज ण तुब्भे

सम्यक्त्व

पहले भिन्न-भिन्न दृष्टि से मुझ-को-पुनः-पुनः-पुनः
करता हूँ—“हे दादिलो ! तुम ~~...~~
अप्रिय है या अफसोस ~~...~~
उत्तर देने पर—अर्थात् ~~...~~
नहीं है उनके ऐसा कहने ~~...~~
ही तरह सर्व प्राणी ~~...~~
को असाता—दुःख है ~~...~~
कारण और पीड़ा ~~...~~

जो अर्थ है ~~...~~
“यह तुमने एका ~~...~~
किया विशेष कदम ~~...~~
तिर्यक दिशा में ~~...~~
बोलते, प्रशासित ~~...~~

एवमाइक्ष्वाक्यह एवं भासह एव परुवेह
 एव पण्णवेह—सब्बे पाणा सब्बे
 जीवा सब्बे भूया सब्बे सत्ता
 हन्तव्या अज्जावेयव्या परियावेयव्या
 परिघेत्तव्या उद्वेयव्या । इत्थवि
 जाणह नरिवत्थ दोसो, अणारिय-
 वयणमेय

अथ पुन एवमाइक्ष्वाक्यो एव
 भासामो एव परुवेमो एव पण्ण-
 वेमो—सब्बे पाणा सब्बे जीवा
 सब्बे भूया सब्बे सत्ता न हन्तव्या
 न अज्जावेयव्या न परिघेत्तव्या

भी प्राणी जीव भूत और सत्व को मारने उस पर हुकूमत करने उसे परित्याप देने उसे दास-दासी रूप से ग्रहण करने और उसे उपद्रव करने में दोष नहीं है ऐसा जानो। ऐसा तुम्हारा कहना अनाय वचन है।”

“हम तो ऐसा कहते ऐसा बोलते ऐसा प्रज्ञापित करते और ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि किसी भी प्राणी किसी भी जीव किसी भी भूत और किसी भी सत्व को नहीं मारना चाहिए उस पर हुकूमत नहीं करनी चाहिए उसे परित्याप नहीं देना चाहिए उसे दासदासी रूप से

न परियावेयव्या न उद्वेयव्वा
 इत्थवि जाणह नत्थित्थ दोसो
 आयरियवयणमेय

(श्रु० १ अ० ४ उ० २)

१४—उवेहि ण वडिया य लोग से
 सब्वलोगमि जे केइ विण्णु
 अणुवीइ पास निक्खित्तदडा
 जे केइ सत्ता पत्थि चयति
 नरा मुयच्चा धम्मविउत्ति अज्जू
 आरभज दुक्खमिणति णच्चा
 एवमाहु सम्मत्तदसिणो

अधीन नहीं करना चाहिए और न उसके प्रति उपद्रव करना चाहिये । इसी में दोष नहीं है ऐसा जानो ।

ऐसा कहना—आर्य वचन है ।

१४—जो लोग धर्म से बाहर हैं—धर्म में विपरीत बुद्धि रखते हैं—उनके प्रति उपेक्षा भाव—मध्यस्थ भाव रखो । जो कोई विरोधियों के प्रति उपेक्षा भाव रखना है वह सब लोक में विद्वान् है ।

जो भी प्राणी कर्म को छोड़ते—छोड़ने में समर्थ होते हैं विचार कर देख वे सब निक्षिप्तदण्ड—भन वचन काया से हिंसा को छोड़ने वाले हैं ।

जो नर मृतार्थ—शरीर शुश्रूषा के प्रति मृतवत् धमविद और सरल हैं वे इस दुःख को आरम्भ—हिंसा—से उत्पन्न जान कर उसे छोड़ते हैं ।

सम्यक्त्वदर्शी सत्त्वज्ञा ऐसा कहते हैं ।

१५—ते सव्वे पावाइया
 दुक्कस्स कुसला
 परिणामुदाहरति
 इय कम्म परिणाय सव्वसो

१६—इह आणाकखी पडिए अणिहे
 एगमप्पाण सपेहाए धुणे सरीर

१७—कसेहि अप्पाण
 जरेहि अप्पाण

१८—जहा जुन्नाइ कट्ठाइ
 हव्ववाहो पमत्थइ
 एव अत्तसमाहिए अणिहे
 विगिच फोह अविक्कपमाणे

१५—दुःख को समझने में कुशल वे सब प्रवादो—
—तत्त्वदर्शी—इस कर्म को सर्वश—सब तरह से
जानकर उसके क्षय की परिज्ञा—बुद्धि—बतलाते हैं।

१६—आशा आराधना का आकांक्षी पण्डित पुरुष
आत्मा को अकेली समझ—शरीर से भिन्न समझ—
अमोह भाव से शरीर को तप से छीन करे।

१७—अपनी आत्मा को कृश करो—पतली करो।
अपनी आत्मा को जीर्ण करो—शुष्क करो।

१८—जिस तरह अग्नि पुराने सूखे लकड़ों को शीघ्र
जलाती है उसी तरह आत्मसमाहित—राग रहित और
क्रोध को छोड़ कर स्थिर बने—जोव के कर्म शीघ्र नाश
को प्राप्त होते हैं।

१६—इम निरुद्धाउय संपैहाए
 दुक्ख च जाण अदु आगमेस्स
 पुढो फासाइ च फासे
 लोय च पास विफदमाण

२०—जे निब्बुडा पावेहिं कम्मेहिं
 अणियाणा ते वियाहिया

२१—तम्हा अतिविज्जो नो
 पडिसजलिञ्जासित्ति वेमि
 (सु० १ अ० ४ उ० ३)

२२—आधीलए पवीलए निप्पीलए
 जहिता पुब्बसजोग हिष्ठा उवसम

१९—इस मनुष्य-भव को अल्प आयुष्यवाला समझ कर, क्रोधादि तत्काल दुःखों के कारण हैं अथवा भविष्य में पापी जीव भिन्न भिन्न स्थानों में दुःखों का स्पर्श करते हैं तथा सारा लोक दुःख से घटपटा रहा है यह देख कर क्रोधादि पापों का परित्याग कर ।

२०—उपरोक्त बातें समझ कर जान कर देख कर जो पाप कर्मों से निवृत्त हैं वे अनिदान—सांसारिक सुख की कामना से दूर—परम सुखी कहे गये हैं ।

२१—इसलिए अव्यन्त विद्वान् पुरुष क्रोधादि से आत्मा को संज्वलित न करे—न जलाये ।

ऐसा मैं कहता हूँ ।

२२—सारे पूर्व संयोगों को त्याग एवं इन्द्रिय जय रूप उपशम भाव को प्राप्त कर, आपीकित कर निष्पोदित कर—तप से आत्मा को उत्तरोत्तर तपा ।

२३—तम्हा अविमणे धीरे
 सारए ममिण् सहिण सया जए
 दुरणुचरो मगो यीराण
 अनियदृगामीण विगिच
 मससोणिय

२४—एस पुरिसे दविण बीरे
 आयाणिञ्जे वियादिण
 जे घुणाइ समुस्सय
 वसित्ता वभचेरसि

२५—नित्तेहि पलिच्छिन्नेहि
 आयाणसोयगदिण वाले
 अब्धोच्छिन्तयघणे

२३—मुक्तिगामी वीर पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करना बड़ा कठिन है, अतएव मास और शोणित को चुसा कर वीर पुरुष मन की अरति को हटा संयम में रह हो समितियों से युक्त रह विवेक सहित सदा इस मार्ग पर यत्न करता रहे।

२४—जो ब्रह्मचर्य में वास करता हुआ कर्मों को धुनता है वही वीर पुरुष संयमी और अनुकरणीय कहा जाता है।

२५—नेत्रादि इंद्रियों के भोग्य पदार्थों से दूर होकर भी जो मूर्ख विषय स्रोत में गुद-प्रवाहित होता है वह वास्तव में छिन्नवधन नहीं होता। वह संयोगों को पार

अणभिवक्तसत्रोण
 तमसि अधियाणओ
 आणाए लभो नत्थि त्ति वेमि

२६—जस्स नत्थि पुरा पच्छा
 मज्जे तस्स कुओ मिया ?

२७—सेहु पन्नाणमते घुट्ठे
 आरभोवरए
 सममेयति पासह
 जेण वध वह घोर
 परियाव च दारुण

२८—पलिच्छिदिय घाहिरग च सोय
 निक्कम्मदसी शह मच्चिएहि

नहीं कर सका है और अज्ञान से अंधकार में निमग्न है।
ऐसे मनुष्य को भगवान् की आज्ञा का लाभ नहीं होता।
ऐसा मैं कहता हूँ।

२६—जिसके पूर्व में और पश्चात् में नहीं है उसके
मध्य में कहाँसे होगा ?

२७—जो आरम्भ—हिंसा-कायसे उपरत है—अलग
है—वही प्रज्ञानी और बुद्ध है।

जिस आरम्भ से बन्धन घोर पथ और दारुण परि-
ताप का भागी होना पड़ता है देख। उससे उपरत
होना ही सम्यक् काय है।

२८—इस मृत्युलोक में जो निष्कर्मदर्शी—मोटाकाठी
और वेदविद्—तत्त्वज्ञ होता है वह याज्ञस्रोत (हिंसादि)

कम्माण सफल ददूण
तथो निजाइ वेयवी

२६—जे खलु भो । वीरा समिया सहिया
सया जया सघडदसिणो
आओवरया अहातह लोय
उवेहमाणा पाईण पडिण
नाहिण उईण इय सच्चसि
परिचिद्धिसु

३०—साहिस्सामो नाण वीराण,
समियाण सहियाण सया
जयाण सघडदसीण आओवरयाण
अहातह लोयं समुवेहमाणाण

और अम्यन्तरस्रोत (राग देवादि) का छेदन कर किये हुए कर्मों को सफल देख पापों से निकल जाता है ।

२९—हे साधक ! निश्चय ही जो पुरुष वीर क्रिया में समित—सावचेत विवेक सहित सदा यत्नवान् दृढ़दर्शी पापकर्म से निवृत्त और लोक को यथाथरूप से देखनेवाले हैं वे पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर- सारी दिशाओं में सत्य में प्रतिष्ठित होते हैं ।

३०—जो वीर हैं क्रियाओं में संयत हैं विवेक सहित हैं सदा यत्नवान् हैं दृढ़दर्शी हैं पापकर्म से निवृत्त हैं और लोक को यथाथ रूप से देखने वाले हैं उनके ज्ञान—अनुभव—को कहता हूँ ।

अविज्जाए पलिमुक्खमाहु
 आवट्टमेव अणुपरियट्ट ति
 त्ति वेमि

(श्रु० १ अ० ५ उ० १)

६—आयन्ती केयावन्ती लोणसि अणा-
 रभजीवी एणमु चेव अणारभजीवी

१०—एत्थोवरए त म्कोसमाणे
 अय सधीति अदक्खु

११—एस मग्गे आरिएहि पवेइए
 उट्टिए नो पमाचए
 जाणित्तु दुक्ख पत्तेय साय

और अविद्या से मोक्ष कहते हैं वे आवर्त—ससार चक्र—
में हो अनुपरिवर्तन—घार-घार भ्रमण—करते हैं ।

९—लोक में जो भी अनारम्भ-जीवो हैं वे छ हो
प्रकार के जीवों के प्रति आरम्भ नहीं करते हुए जीवन
यापन करते हैं ।

१०—वह आरम्भ से उपरत हो कर्मों का क्षय करता
रहता है ।

वह देखता है कि यही संधि—अवसर—है ।

११—यह माण आर्यों ने कहा है

दुःख और सुख के विभिन्न रूपों को जानकर
संयम में उन्निधत हो प्रमाद न कर ।

१२—पुढोऽगदा इह माणवा
पुढो दुक्त्वा पवेइय

१३—से अविहिंसमाणे अणवयमाणे
पुढो फासे विपणुन्नए

१४—एस समिया परियाए वियाहिण

१५—जे असत्ता पावेहिं वम्मेहिं उदाहु ते
आयका पुसति, इति उदाहु घीरे
ते फासे पुढो अहियासइ

१२—ससार में मानव पृथक् पृथक् अभिप्राय वाले होते हैं ।

दुःख भी प्रत्येक का भिन्न भिन्न कहा गया है ।

१३ - वह हिंसा न करता हुआ झूठ न बोलता हुआ रहे ।

परिपहों से स्पर्शित होने पर उन्हें समभाव से सहन करे ।

१४—ऐसा संयमी ही उत्तम पर्यायवाला—उत्तम चारित्रशील कहा गया है ।

१५—जो पापकर्मों में आसक्त नहीं है उन्हें भी कदाचित् आसक्त स्पर्श करते हैं । उन स्पर्शों से स्पृष्ट होने पर उन्हें पूर्व कर्मों का फल जान समभाव से सहन करे । धीर पुरुषों ने ऐसा ही कहा है ।

१६—पासह एय रूवसंधि समुप्पेहमाणस्स
 उक्काययणरयस्स इह विप्पमुक्कस्स
 नत्थि मग्गे विरयस्स त्ति वेमि
 (श्रु० १ अ० ५ उ० २)

१७—आवती वेधावती लोगसि परिग्गहा-
 वती, से अप्प वा बहु वा अणु
 वा थूल वा चित्तमत वा अचित्त-
 मत वा एणमु चेत्त परिग्गहावती

१८—एतदेव एगोसि महाब्भय भवइ

१९—लोगयित्त च ण उवेहाण
 एण सग्गेअवियाणओ

१६ - दैत—दैत के स्वरूप को इस प्रकार दैतनेवाले और आत्मा के गुणों में समान करनेवाले विप्रमुक्त और विरक्त के लिए भव भ्रमण का मार्ग सुला नहीं रहता ।

१७—इस लोक में जो परिग्रही हैं वे अल्प हो या बहुत अणु हो या स्थूल सचित्त हो या अचित्त सभी वस्तुओं का परिग्रह करते हैं ।

१८—यह परिग्रह ही एक-एक परिग्रहिकों के महाभय का हेतु है ।

१९—लोकवित—परिग्रह—के स्वरूप का चिन्तन कर । इससे दूर रहनेवाले को कोई भय नहीं होता ।

२०—से सुपडियद्ग सूवणीयति नञ्चा
पुरिसा परमचक्षू विपरिष्कमा

२१—एणसु चेव वभचेर त्ति वेमि

२२—से सुय च मे अज्मत्थय च मे—बधप-
मुक्खो अज्मत्थेव

२३—एत्थ विरण अणगारे दीहराय-
तितिक्खण

२४—पमत्तो वहिया पास
अप्पमत्तो परिञ्जण

२०—जो निर्यरिग्रही है वह सु-प्रतिबद्ध है, सु उपनीत है। यह जानकर है पुरुष। परम चक्षुवाला ही संयम में पराक्रम कर।

२१—ऐसे साधकों में ही ब्रह्मचर्य होता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

२२—मैंने सुना है और अनुभव भी किया है कि बन्ध और मोक्ष आत्मा ही है।

२३—इस परिग्रह से विरत अनगार यावज्जीवन तितिक्षामात्र रखे।

२४—प्रमत्त को धर्म से बाहर देख अप्रमत्त भाव से संयम में विचरण कर।

२५—एय मोण सम्म अणुवासिज्जासि
त्ति वेमि

(श्रु० १ अ० ५ उ० २)

२६—आवती केयावती लोयसि अपरि-
ग्गाहावती एणसु चेव अपरिग्गाहावती

२७—सुधा वई मेहावी पडियाण निसा-
मिया

२८—समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए

२९—जद्धित्थ मए सधी कोसिण
एवमन्नत्थ सधी दुज्जकोसए भवइ
तम्हा वेमि नो निहणिल्ल वीरिय

२५—इस मौन का अच्छी तरह पालन कर—ऐसा में कहता हूँ।

२६—लोक में जो अपरिग्रही हैं वे (अल्प या बहु अणु या स्थूल संचित या अचित्त किसी वस्तु का परिग्रह नहीं करते।

२७—मेधावी पुरुष आप्तवाणी को सुन अथवा पण्डितों की वाणी को सुन (परिग्रह का त्याग करे)।

२८—आर्यों ने समता में धर्म कहा है।

२९—जिस प्रकार यहाँ मैंने कर्मों की सधि को धीन किया है उसी प्रकार अन्यत्र कर्म-सन्धि का धीन होना कठिन है।

अब कहता हूँ अपने वीर्य का गोपन न कर।

३६—न इम मक्क सिद्धिलेहि धदिञ्ज-
माणोहि गुणसाएहि वकसमायारेहि
पमत्तेहि गारमायसतेहि

४०—मुणी मोण ममायाए धुण सरीरा
पत ल्ह सेयति वीरा मम्मत्तदसिणो
एस ओहन्तरे मुणी, तिण्णे मुत्ते
धिरए वियाहिण त्तियेमि
(श्रु० १ अ० ५ उ० ३)

४१—गामाणुगाम दूइज्जमाणस्त दुज्जाय
दुप्परक्कत भवइ अवियत्तस्त
भिक्षणो

३९—शिथिल, आर्द्र विद्ययास्वादी वक्राचारी प्रमत्त और घर में रहनेवाले मनुष्यों द्वारा यह शक्य नहीं है।

४०—मुनि मोन को धारणकर शरीर को धुने—कृश करे। सम्यक्त्वदर्शो वीर प्रातः और रुक्ष आहार का सेवन करते हैं।

ससार समुद्र को तिरनेवाला ऐसा मुनि ही तीर्थ मुक्त तथा विरक्त कहा गया है—ऐसा मैं कहता हूँ।

४१—ग्रामानुग्राम में अकेले विचरते हुए अव्यक्त भिक्षु का विहार दुर्यात और दुःखपराक्रान्त होता है।

३६—न इम सक्क सिडिलेहि अरिन्न-
माणेहि गुणसाण्हि वकसमायारेहि
पमसेहि गारमावसतेहि

४०—मुणी मोण समायाए धुणे सरीरग
पत ल्हू सेवति वीरा मम्मत्तदंसिणो
एस ओहन्तरे मुणी, तिण्णे मुत्ते
धिरए धियाहिए तिबेमि

(श्रु० १ अ० ५ उ० ३)

४१—गामाण्णगाम दूइजमाणस्स दुज्जाय
दुप्परक्कत भवइ अबियत्तस्स
भिक्षणो

३९—शिथिल, आद्र विद्ययास्वादी वक्राचारी प्रमत्त और घर में रहनेवाले मनुष्यों द्वारा यह शक्य नहीं है ।

४०—मुनि मोन को धारणकर शरीर को धुने—कृश करें । सम्यक्त्वदर्शी वीर प्रांत और रुक्ष आहार का सेवन करते हैं ।

संसार समुद्र को तिरनेवाला ऐसा मुनि ही तीर्थ मुक्त तथा विरक्त कहा गया है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

४१—ग्रामानुप्राप्त में अकेले विचारते हुए अश्वत्थ भिक्षु का विहार दुर्यात और दुष्पराक्रान्त होता है ।

४२—चयसावि णो बुद्ध्या कुम्पति
मानवा

४३—उन्नयमाणे य नरे महया मोहेण
मुञ्ज्मइ

४४—सवाहा बह्वे भुञ्जो भुञ्जो
दुरइक्कम्मा अजाणओ अपासओ

४५—एय ते मा होउ
एय कुसलस्स दसण

४६—तद्धिटीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे
तत्सन्नी तन्निवेसणे

४२—कई मनुष्य वचन मात्र से कुपित हो जाते हैं ।

४३—अभिमानो मनुष्य महामोह से विवेक शून्य होता है ।

४४—अज्ञानी और मोहान्ध मनुष्य के सामने बार बार अनेक दुरतिक्रम बाधाएँ उपस्थित होती हैं ।

४५—ऐसा तुम्हें न हो
यह ज्ञानी की दृष्टि है ।

४६—शिष्य सद्दृष्टि हो—गुरु की दृष्टि से चले ।
उसकी निस्सगता का अनुसरण करे । उसे अप्रसर रखे ।
उसमें पूरा श्रद्धा रखे । उसके पास रहे ।

४७—जय विहारी चित्तनिवाहै पथ
निज्झाहै पलियाहिरे पासिय पाणे
गच्छिज्जा

४८—से अभिक्कममाणे पहिक्कममाणे
सकुचमाणे पमारेमाणे विणिवट्टमाणे
सपलिज्जमाणे

४९—एगया गुणममियस्स रीयओ फाय-
सफास समणुचिन्ना एगतिया
पाणा उदायति इह्लोग वेयण
विजावट्ठिय

ज आउट्टिकय कम्म स

४७—वह यत्नपूर्वक विहार करे। चलते समय उसमें ही चित्त रसे। वह पथ पर दृष्टि रखता हुआ प्राणियों को देखता—टालता—हुआ चले।

४८—वह जाना आना संकोच प्रसार विनिवर्तन प्रमार्जनादि कार्य यत्न से करे।

४९—यदि कभी गुण और सन्नितियों से युक्त संयमी की गमन आदि क्रिया के द्वारा काया-स्पर्श के कारण कोई प्राणी आहत या व्यथा जानेवाला प्राण होता है तो कर्म इसी भव में अनुभव होकर क्षय हो जाता है।

यदि कर्म आकुट्टि पूर्वक—संकल्प पूर्वक किया हुआ हो तो उसे जानकर प्रायश्चित्त द्वारा दूर करना चाहिए।

परिन्नाय विवेगमेह, एव से
अप्पमाण विवेग किट्टु वेयवी

१०—से पभूयदमी पभूयपरिन्नाणे उरसते
ममिण महिए सयाजण, दट्ठ,
विप्पट्टिवेएइ अप्पाण किमेम जणो
परिस्सइ ? णस से परमारामो
जाओ लोगमि इत्थीओ मुणिणा
हु ण्य पवेइय

११—उत्थाहिजमाणे गामधम्मेहि अवि
निव्वलासण अवि ओमोयरिय
कुञ्जा अवि इडु ठाण ठाइजा
अवि गामाणुगाम दुइजिजा अवि

लोकसार

इस प्रकार अन्नमाद पूर्वक विद्वान् प्रवृत्तियों का पुण कीर्तन करते हैं।

५०—यह वादशी, दण्डनी सुनकर अन्नमाद गुणवान सदा यत्नवान पत्नी का दृष्टिकोण बदल करे—यह मेरा क्या दुःख का कारण है? मैं मेरे में स्त्रियाँ परमाराम—एक दिन मैंने ऐसा कहा है।

५१—कर्मिकों को अन्नमाद से पीड़ित हो तो उन्हें अन्नमाद का आहार की मात्रा का ध्यान रखना है।

आहार बुच्छिदिजा अवि चए
इत्थीसु मण

१२—पुव्व दढा पच्छा फासा पुव्व फासा
पच्छा दढा इच्चेए कल्हासगकरा
भरति पडिरेहाए आगमित्ता
आणविज्जा अणासेवणाए त्ति वेमि

१३—से नो काहिए नो पासणिए
नो मामए नो वय किरिण
वइगुत्ते अङ्माप सगुडे परिवज्जइ
सयापाव एय मोण समणुवासि-
ज्जासि त्ति वेमि

(श्रु० १ अ ५ उ० ४)

एक ग्राम से दूसरे ग्राम चला जाय । अक्षर का लक्ष्य
विच्छेद कर दे । स्त्री में मन को न लगावे ।

५२—पहले दण्ड है पीछे स्वर्ग—भोग । पहले स्वर्ग
—भोग है पीछे दण्ड । ये भोग बल्ले और मोह के
हेतु हैं । इसे अच्छी तरह देख—ज्ञान—आत्मा को
भोग सेवन से दूर रहने को सिखा दे । ऐसा मैं
कहता हूँ ।

५३—वह स्त्री कथा न करे, त्रिपयों की ओर न
ताकें । उनके साथ एकांत वास न करे, उनके प्रति ममत्व
न करे । उनके चित्त को अकर्षित करने के लिए
साज सज्जा न करे । कब वचन से गुप्त रह जायता को
सदृश रख पापकर्म से सदा दूर रहे । दृ इतन तरह भोजन—
ब्रह्मचर्य की उपासना करे । ऐसा मैं कहता हूँ ।

१४—वितिगिच्छसमावन्नेण अप्पाणेण
नो ल्हइ समाहिं

१५—तमेव सच्च नीसकं ज जिणेहिं
पवेइय

१६—सिया वेगे अणुगच्छति
असिता वेगे अणुगच्छति
अणुगच्छमाणेहिं अणुगच्छमाणे
फह न निव्विज्जे ?

१७—सङ्खिम्म ण समणुन्नस्स संपव्वय-
माणस्स समियति मन्नमाणस्स
एगया समिया होइ

५४—सशय-उत्त आत्मा द्वारा समाधि प्राप्त नहीं की जा सकती ।

५५—यही सत्य है निःशङ्क है जो जिनों द्वारा प्रवेदित है—कश्चित्त है ।

५६—कई गुरुस्य दृष्टि का अनुसरण करते हैं । कई गुरुव्यापी भी दृष्टि का अनुसरण करते हैं । अनुसरण न करनेवाले अनुसरण करनेवालों के बीच रह कैसे निर्णय को प्राप्त करेगा ?

५७—प्रबालू और अच्छी तरह प्रयोजित होने वाले समझदार पुरुष के समय—जिन कश्चित्त धर्म—ही सत्य है ऐसी मन्दा होती है ।

समियति मन्नमाणस्त एगया
 असमिया होइ
 असमियति मन्नमाणस्त एगया
 समिया होइ
 असमियंति मन्नमाणस्त एगया
 असमिया होइ
 समियति मन्नमाणस्त समिया
 वा असमिया वा समिआ होइ
 उवेहाए
 असमियति मन्नमाणस्त समिया
 वा असमिया वा असमिया होइ
 उवेहाए

“समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है —आरम्भ में ऐसा माननेवाले को श्रद्धा कदाचित् वाद में असम्यक हो जाती है ।

समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है’ आरम्भ में ऐसा न माननेवाले को श्रद्धा कदाचित् वाद में वैसी नहीं रहती’ —सम्यक हो जाती है ।

“समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है’ आरम्भ में ऐसा न माननेवाले की श्रद्धा कदाचित् वाद में वैसी नहीं रहती असम्यक हो जाती है ।

समय—जिन-कथित धर्म—ही सत्य है ऐसा माननेवाले के सम्यक अथवा सम्यक् तत्व सम्यक् विचार से सम्यक् ही होते हैं ।

“समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है ऐसा न माननेवाले के सम्यक अथवा तत्व असम्यक् विचार के कारण असम्यक् ही होते हैं ।

५८—उवेहमाणो अप्णुवेहमाण यूया-
उवेहाहि समियाप, इच्चेवं तत्य
संधी म्नीसिओ भजइ, से उट्टियस्स
ठियस्स गइ समणुपासह, इत्यवि
धाळभावे अप्पाण नो उवदसिज्जा

५९—तुमसि नाम सच्चेव ज हंतव्वति
मन्नसि, तुममि नाम सच्चेव
ज अज्जावेयव्वति मन्नसि, तुमसि
नाम सच्चेव ज परियावेयव्वति
मन्नसि एव ज परिधितव्वति
मन्नसि, ञ उदवेयव्वति मन्नसि,

५८—सत्यदर्शी संशयग्रस्त से कहे - सम्यक रूप से विचार कर इस तरह संयम में प्रवृत्ति से ही कर्म का नाश होता है ।

सत्स्थित और स्थित की गति को अच्छी तरह देख अपनी आत्मा को इस बाल-भाव में उपदेशित न कर ।

५९—हे पुरुष ! जिसे तू मारने की इच्छा करता है विचार कर वह भी तेरे जैसा ही सुख दुःख का अनुभव करनेवाला प्राणी है ; जिस पर हुकुमत करने की इच्छा करता है विचार कर वह भी तेरे जैसा ही प्राणी है ; जिसे दुःख देने का विचार करता है विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है ; जिसे अपने वश में रखने की इच्छा करता है विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है ; जिसके प्राण लेने की इच्छा करता है विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है ।

अजू पेयपहियुट्नीवी
गग्दा न दता नवि पायत

अणुसवेयणमप्पाणर्णं ज हत्तव्व
नामिपत्थण

६०—जे आया से विन्नाया
जे विन्नाया से आया
जेण वियाणइ से आया
त पदुच्च पहिसखाए

६१—एस आयावाई समियाए
परियाए वियाहिए सि वेमि

(सु० १ अ० ५ उ० ५)

सब पुरुष इसी तरह धियेक रखता हुआ जीवन बिताता है। वह न किसी को मारता है और न किसी की घात करता है।

जो हिंसा करता है उसका फल पीछे उसे ही भोगना पड़ता है अतः वह किसी भी प्राणी की हिंसा करने की कामना न करे।

६०—जो आत्मा है वह विज्ञाता है। जो विज्ञाता है वह आत्मा है। जिससे जान्ब जाता है वह आत्मा है। जानने के सामर्थ्य के द्वारा ही आत्मा की प्रतीति सिद्ध होती है।

६१—जो व्यक्ति आत्मवादी है उसी का पर्याय—सयमानुष्ठान सम्यक् कहा गया है। ऐसा मैं कहता हूँ।

६२—अणाणाए एगे सोवट्टाणा
 अणाए एगे निरुवट्टाणा
 एय ते मा ह्योड
 एय कुसलस्स दसण
 तदिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे
 तस्सन्नी तन्निवेसणे अभिभूय
 अदक्खू

६३—अणभिभूए पमू निरालवणयाए
 ओ मह अवहिमणे

६४—पवाएण पवाय जाणिजा

६२—कई अनाज्ञा में उद्यमी होते हैं । कई आज्ञा में निरुद्यमी होते हैं । यह हाल तेरा न हो ।

यह कुशल पुरुष का दर्शन है गुरु की दृष्टि से देखनेवाला, गुरु की निर्लोभ वृत्ति से चलने वाला गुरु को आगे रखने वाला गुरु में पूर्ण श्रद्धा रखने वाला और सदा गुरु के समीप रहने वाला शिष्य दुर्गुणों को जीत कर दृष्टा बनता है ।

६३—जो अपने विनय में महान् है जिसका मन दृष्टि से जरा भी बाहर नहीं वह किसी से अपराजित शिष्य निरालम्बन में—सब विघ्नों में उच्च भावना के आधार पर टिके रहने में—समर्थ होता है ।

६४—प्रवाद से प्रवाद को जानो । कथन से कथन को जानो ।

६१—सहसंमद्ययाए परवागरणेण अन्नेसि
वा अतिए सुधा

६६—निदेस नाइवट्टेज्जा मेहावी
सुपडिलेहिया सन्वओ सन्वप्पणा
सम्म समभिज्जाय

६७—इह आराम परिण्णाय अल्लीणे
गुत्ते आत्तामो परिण्णए

६८—निट्ठीयट्ठी वीरे आग्गेण सया
परक्कमेज्जामि त्ति वेमि

६९—उट्टु सोया अहे मोया
तिरियं सोया वियाहिया ।

६५—अपनी बुद्धि से अनुभवियों के वचन से अथवा दूसरों से सुनकर ही परमार्थ जाना जाता है ।

६६—मेधावी सर्व प्रकार से सर्वतो माव से अच्छी तरह जान लेने पर आज्ञा का उल्लङ्घन न करे ।

६७—इस संसार में संयम ही सच्चा आराम है यह जानकर मुमुक्षु इन्द्रियों को दश कर संयम में तल्लीन हो उसका पालन करे ।

६८—निष्ठावान् आत्मार्थी सदा आगम के अनुसार पराक्रम करे ।

६९—उर्ध्व स्रोत है अध स्रोत है तिर्यक दिशा में मो स्रोत है । देख । इन पाप-प्रवाहों को ही स्रोत

६५—सहसमश्रयाप परवागरणेणं अन्नेसि
वा अतिप सुभा

६६—निरेसं नाश्वट्टेज्जा मेहाधी
सुपडिलेहिया सब्वओ सब्वप्पणा
सम्म समभिण्णाय

६७—इह आराम परिणाय अल्लीणे
गुत्ते अन्नमो परिव्वण

६८—निट्ठीयट्ठी वीरे आगमेण सया
परक्कमेज्जासि त्ति वेमि

६९—उट्टुं सोया अहे सोया
तिरियं सोया वियाहिया ।

६५—अपनी वृद्धि से अनुभवियों के वचन से अथवा दूसरों से सुनकर ही परमाथ जाना जाता है ।

६६—मेधावी सब प्रकार से सर्वतो भाव से अच्छी तरह जान लेने पर आज्ञा का उल्लङ्घन न करे ।

६७—इस संसार में संयम ही सच्चा आराम है यह जानकर मुमुक्षु इन्द्रियों को बश कर संयम में तल्लीन हो उसका पालन करे ।

६८—निष्ठावान् आत्मार्थी सदा आगम के अनुसार पराक्रम करे ।

६९—ऊर्ध्व स्रोत है अध स्रोत है तिर्यक् दिशा में भी स्रोत है । देख । इन पाप-प्रवाहों को ही स्रोत

एए सोया विअक्त्वाया
जेहि सर्गति पासहा ॥

७०—आवट्ट तु पेहाए इथ विरमिज्ज-
वेयवी

७१—विणइत्तु सोय निक्खम्म एस मह
अम्मो जाणइ पासइ पडिलेहाए
नाचकरइ

७२—इह आगइ गइ परिन्नाय
अच्चेइ जाइमरणस्स वट्टमगा
विक्खायरए

संख्या -

२५१

एक ही शब्द का अर्थ अलग-अलग हो सकता है।

शब्द निवृत्त की पर्यन्त कर्म मल होता है।

शब्दों के अर्थ अलग-अलग हो सकते हैं।

गोल । वह न कृष्ण है । वह न लाल है न ककश है न

शब्दों के अर्थ अलग-अलग हो सकते हैं।
एक ही शब्द का अर्थ अलग-अलग हो सकता है।
शब्दों के अर्थ अलग-अलग हो सकते हैं।

शब्दों के अर्थ अलग-अलग हो सकते हैं।
एक ही शब्द का अर्थ अलग-अलग हो सकता है।

७३—मन्वे सरा नियदृन्ति
 तक्का जत्थ न विज्जइ
 मइ तत्थ न गाहिया
 ओण अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने
 से न दीहे न हस्से न वट्टे
 न तसे न चउरसे न परिमहले
 न किण्हे न नीले न लोहिए
 न हालिदे न सुप्फिल्ले
 न सुरभिगघे न दुरभिगघे
 न तित्ते न कडुए न कसाए
 न भविले न महुरे न कप्पट्ठे
 न भउए न गरुए न लहुए
 न उण्हे न निद्धे न लुप्पट्ठे

७३—उस दशा का वर्णन करने में सारे शब्द निवृत्त हो जाते—समाप्त हो जाते हैं। वहाँ सर्क की पहुँच नहीं और न वृद्धि उसे ग्रहण कर पाती है। कर्म मल रहित केवल चैतन्य ही उस दशा का ज्ञाता होता है।

मुक्त आत्मा न दीर्घ है न ह्रस्व न वृत्—गोल। वह न त्रिकोण है, न चौरस, न मण्डलाकार वह न कृष्ण है न नील न लाल न पीला और न श्वल ही। वह न सुगन्धि वाला है, न दुर्गन्धि वाला है। वह न तिक्त है न कड़ुआ न कपैला न सड़ा और न मधुर। वह न ककश है न मृदु। वह न मारी है न हल्का। वह न शीत है न उष्ण। वह न सिन्धु है न रुक्ष।

न काऊ न रुहे न सगे
 न श्थी न पुरिसे न अन्नहा
 परिन्ने सन्ने षवमा न विञ्जण
 अरुधी सत्ता
 अपयस्स पय नत्थि
 से न सहे न रुवे न गधे न रसे
 न फासे इच्चेव त्ति वेमि ।

(श्रु० १ अ० ५ उ० ६)

वह न शरीर धारो है न पुनर्जन्मा न आसक्त ।
 वह न लो है न पुरुष है, न नपुंसक ।

वह ज्ञाता है, वह परिच्छाता है, उसके लिए कोई
 रचना नहीं ।

वह अस्वी सत्ता है ।

यह अन्त है वचन अगोत्र के लिए कोई पद—
 दकक छन्द नहीं । वह छन्द स्व नहीं स्वका नहीं,
 स्व स्व नहीं स्व स्व नहीं, स्व स्व नहीं । वह
 ऐसा कुछ भी नहीं । ऐसा नै कहता हूँ ।

पुयं

- १—ओए समियदंसणे
 दय लोगस्त जाणित्ता
 पाईण पढीणं दाहिण उदीण
 आइक्खे विमए किट्ठे वेयवी
- २—से उट्ठिएसु वा अणुट्ठिएसु वा सुत्त-
 समाणेषु पवेयए सति विरद् उवसम
 निब्ब्राण सोय अज्जविय मदविय
 लाघविय अणइवत्तिय
- ३—सब्बेसि पाणाण सब्बेसि भूयाण
 सब्बेसि जीवाण सब्बेसि सत्ताण
 अणुवीइ भिक्खु घम्ममाइक्खिअंजा

ना
॥ ह
॥ लिए

२-१०-१९६६
बालों के लिए
उपहार
उपहार

३-१०-१९६६
को लिए

॥

४—अणुवीड् भिक्व् घम्ममाइक्यमाणे
 नो अत्ताण आसाइज्जा नो पर
 आसाइज्जा
 नो अन्नाइ पाणाइ भूयाइ जीवाइ
 सत्ताइ आसाइज्जा

५—से अणासायए अणासायमाणे
 घज्जमाणाण पाणाण भूयाण जीवाण
 सत्ताण जहा से दीवे असदीणे
 एए से भवइ सरण महामुणी

(अ० १ अ० ६ उ० ५)

४—विचार का धर्म कथन करता हुआ भिड़ अपनी आशातना न करे न दूसरे की आशातना करे। वह अन्य प्राणी भूत जीव और सत्त्व की आशातना न करे।

५—वह आशातना न करनेवाला और आशातना न करनेवाला महामुनि एसी तरह शान्भूत होता है जिस तरह वध्य प्राणी भूत जीव और सत्त्वों लिए असंदिन दीव।

विमोहो

१—इहमेगेसि आचारगोयरे नो मुनिसन्ते
भवति

२—ते इह आरम्भद्वी अणुवयमाणा
हण पाणे पायमाणा हणओ यावि
समणुजाणमाणा अदुवा अदिन्न-
माथयन्ति अदुवा वायाउ विउज्जति
तजहा अत्थि लोए नत्थि लोए
धुवे लोए अधुवे लोए साइए लोए
अणाइए लोए सपज्जवसिए लोए
अपज्जवसिए लोए

विमोक्ष

१—इस संसार में कइयों को आचारगोबर छड़ी
साह झाल नहीं होता ।

२—वे इस संसार में आम्मर्दी हो चुके व सु-
सारण करते हुए कहते हैं "प्रणितो व कश्चिद्" ।
इस तरह वे घाल करवाते हैं । ईश्वर को भूल कर
मोदन करते हैं । अथवा विना शिवा के कर्म-सा-
कारते हैं । अथवा इस तरह की बातें कहते हैं
हे लोक नहीं है, लोक धर्म है, धर्म ही है, धर्म
आदि है लोक आदि नहीं है, यह तर्क-वितर्क है ।

सुफुडेत्ति वा दुफुडेत्ति वा फल्लाणेत्ति
वा पावेत्ति वा साहुत्ति वा असा-
हुत्ति वा सिद्धित्ति वा असिद्धित्ति वा
निरएत्ति वा अनिरएत्ति वा ।

३—जमिण विप्पडिबन्ना मामग घम्म
पन्नवेमाणा इत्थवि जाणह् अकस्मात्

४—एव तेसिं नो सुयक्खाए घम्मे नो
सुपन्नते घम्मे भवइ

५—से जहेय भगवया पवेइय आसुपन्नेण
जाणया पासया अदुवा गुत्ती
वओगोयरस्स ति वेमि

लोक अपर्यावसित है ; यह सुकृत है यह दुष्कृत है ;
यह पुण्य है यह पाप है ; यह साधु है यह असाधु है ;
सिद्धि है सिद्धि नहीं है ; नरक है नरक नहीं है ।'

३—इस प्रकार ये विभिन्न मतिवाले मेरा धर्म (ही सत्य है) ऐसी प्ररूपणा करते हैं। पर उनके कथन अकस्मात् हैं यह जानी ।

४—इस तरह उनका कहा हुआ और प्ररूपित किया हुआ धर्म सु-आख्यात और सु प्रशापित धर्म नहीं होता ।

५—अगर धर्म कहे तो जैसा आशुप्रज्ञ भगवान ने जानकर देखकर कहा है वैसा कहे अथवा वचनगोचर की गृहि रसे—मौन रहे ।

ककमिता अप्पडे अप्पपाने अप्प
 यीण अप्पहरिण अप्पोमे अप्पो-
 षण अप्पुत्तिगपनगदगमद्वियमववदा-
 सताणए पहिलेहिय २ पमत्रिय २
 तणाइ सयरिआ । तणाइ सयरिआ
 पत्थवि समए इत्तरिय कुआ ।

त सच्च सचवाइ ओए तिल्ले
 द्विन्नकह्वटे आइयट्टे अणार्इए
 विष्वाण भेउर काय सविहय
 विरुवरुवे परीसठोवरामो अस्सि
 विसमणयाण भेरवमणुचिन्ने ।
 तत्थावि तत्त कालपरियाए सेवि
 तत्थ विर्यंतिकारए ।

विशेष

सिद्धि के लिये जो कुछ करना पड़े
सहित होंगे वही ही सही है।
जल ही होंगे वही ही सही है।
मिठी ही सही है।
सह देखकर ही
को विधि है।
मरण ही।

सद्यः ही
कदा कदा ही
मुक्त मित्र ही
भाला प्रवर्द्ध ही
तथा भाव ही
सत्य भी ही
मरण ही ही ही ही ही ही ही ही
मरण ही। ही ही ही ही ही ही ही ही
करनेवाला ही ही ही ही ही ही ही ही

इच्छेयं विमोहाययण द्वियं मुदं
 होम निस्सोम आनुगामिय त्ति चेमि ।
 (सू० १ अ० ८ व० ६)

२४—जन्म न भिषक्तुरस त्व भयम् —
 से गित्तामि च मनु खद् इममि
 समग इम मरीरगं अणुपुच्छेण
 परियहित्तप तजाद् सघरिज्जा
 इत्यधि समप काय च ओग च
 हेरिय च पन्चपक्षाग्जा
 त सन्ध सन्धायाद् अनु-
 गामिय त्ति चेमि

(सू० १ अ० ८ व० ७)

यह मरण भी मोह रहित व्यक्तियों का आश्रय-स्थल रहा है। यह हितकारी है, सुखकारी है, डेमकर है निःश्रेयस है और अनुगामी है—पर जन्म में भी शुभ फल देनेवाला है। ऐसा मैं कहता हूँ।

२४—जिस भिक्षु को ऐसा हो कि मैं इस समय ग्लान हो गया हूँ, अनुक्रम से संयम पालन के लिए इस शरीर को परिवहन करने में असमर्थ हूँ, वह गुणों को दिशावे। वहाँ उस समय शरीर का योग का ईया का प्रत्याख्यान करे।

सत्यवादी ओजस्वी दुर्धीर्ण मरण को अपनावे। निश्चय ही यह मरण भी निःश्रेयस है और अनुगामी है—पर जन्म में भी शुभ फल देनेवाला है। ऐसा मैं कहता हूँ।

२५—से भिक्षू वा भिक्षुणी वा अमर्णं
 वा (४) आहारेमाणे णो धामाओ
 हणुयाओ दाहिण हणुय मंघारिजा
 आसाणमाणे दाहिणाओ वाम हणुय
 नो सघारिजा आमाणमाणे ।
 से अणासायमाणे लाघविये आगम-
 माणे तवे से अभिममन्नागए
 भवड । जमेय भगवया पवेडय तमेय
 अभिसमिणा मव्वओ मव्वस्ताए
 समत्तमेव समभिजाणिया ।

(शु १ अ० ८ व० ६)

२६—जे भिक्षू अचेले परिवुमिए तस्स णं
 भिक्षुस्स एव भवइ-चाएमि अइ

२५—भिक्षु अथवा भिक्षुणी असनादिक का आहार करते हुए स्वाद लेने के लिए उस आहार को बायें गाल से दाहिने गाल की ओर न ले जावे और न स्वाद के लिए दक्षिण गाल से बायें गाल की ओर ले जाय । स्वाद न लेने से लाघवता प्राप्त होती है । तप भी प्राप्त होता है । भगवान ने जो कहा है, उसे ही जानकर, सर्व प्रकार से समभाव को जानते हुए रहै ।

२६—जो भिक्षु अचेलक हो उसे यदि ऐसा हो कि मैं सृण स्पर्श को सह सकता हूँ शीत स्पर्श को सह सकता

तणफास अहियासित्तए सीयफासं
 अहियासित्तए तेउफास अहिया-
 सित्तए दसमसगफास अहियासित्तए
 एगयरे अन्नतरे विरुवरुवे फासे
 अहियासित्तए हिरिपडिच्छायण
 चइ नो सचाएमि अहियासित्तए
 एव से कप्पेइ कडिवधण धारित्तए

२७—अदुवा तत्थ परक्कमत भुज्जो अचेल
 तणफासा फुसति सीयफासा फुसति
 तेउफासा फुसति दसमसगफासा
 फुसंति एगयरे अन्नयरे विरुवरुवे
 फासे अहियासेइ

हैं, ताप स्पर्श को सह सकता हैं दंश-मशक-स्पर्श को सह सकता हैं तथा अन्य भी अनुकूल प्रतिकूल स्पर्श सह सकता हैं, पर नम्र रहने का परिग्रह नहीं सहन कर सकता तो उसे कटि-बंधन धारण करना कल्पता है ।

२७—अथवा लज्जा को जीत सकता हो तो अघेल ही रहे । उस प्रकार रहते हुए चुण-स्पर्श शीत-स्पर्श तेज-स्पर्श दंश-मशक-स्पर्श तथा ऐसे ही अन्य विविध प्रकार के स्पर्श स्पर्श करें—आ धेरें—तो उन्हें सहन करे ।

अचेले लाघविय आगममाणे तवे
 से अभिसमन्ना गण भवइ जमेय
 भगवया पवेइय तमेव अभिसमिच्छा
 सठ्वओ सठ्वत्ताए समत्तमेव
 समभिजाणिया

(श्रु० १ अ० ८ उ० ७)

२८—जे भिक्खू तिहि वत्थेहिं परिवुसिए
 पायषडत्थेहिं तस्स ण नो एव
 भवइ—चउत्थ वत्थ जाइस्सामि ।

से अहेसणिज्जाइ वत्थाइ जाइजा ।
 अहापरिग्गहियाइ वत्थाइं
 धारिजा नो धोइजा नो धोयरत्ताइ

इससे लाघवता प्राप्त होती है और तप भी प्राप्त होता है। भगवान ने जो कहा है उसे ही जानकर सब प्रकार से समभाव को जानते हुए रहें।

२८—जो भिक्षु तीन वस्त्र और चतुर्थ पात्र से रहता है उसके ऐसा विचार नहीं होता कि मैं चतुर्थ वस्त्र की याचना करूँगा।

यह भिक्षु अपनी वस्त्र की याचना करे।

भिक्षु मिले ही जैसे ही वस्त्र धारण करे। वस्त्र न धोवे। धोये हुए और रंगे हुए वस्त्रों को धारण न करे। ग्रामान्तर

वत्याइ पारिष्वा अपत्रिञ्जोषमाणे
 गामतरेसु ओमपेडिण एव सु
 वत्यधारिस्त सामगिय ।

२६—अह पुण एव जाणिष्वा—उवाइवचंते
 खलु हेमते गिण्ठे पडिबन्ने
 अहापरिजुन्नाइ वत्याइ परिद्विष्वा
 अदुवा सतस्सरे अदुवा ओमपेडे
 अदुवा एगसाढे अदुवा अचेले ।
 छापविय आगममाणे तवे से अभि-
 समन्नागए भवइ जमेय भगवया
 पवेइय तमेव अभिसमिच्चा सब्वओ
 सब्वत्ताए सम्मत्तमेय मगभि
 जाणिष्वा (सु० १ अ० ८ उ० ४)

जाते हुए गोपन न करते हुए अल्प वस्त्रधारी हो। निश्चय ही यह वस्त्रधारी की सामग्री—उसका आचार है।

२९—अनन्तर ऐसा जानकर कि हेमन्त ऋतु बौत गई है ग्रीष्म ऋतु आ गई है, भिक्षु परिजीर्ण वस्त्रों को परत दे, अथवा पास ही रखे अथवा कुछ रखे, अथवा एक साटिक ही जाय अथवा अचेलक हो जाय।

इस तरह लायवता होती है, तप होता है।

यह जो सब भगवान् ने कहा है उसे ही जानकर सर्वतः सर्व प्रकार से सनमाव को जाने।

३०—से वेमि समणुन्नास्स वा अस्समणुन्नास्स
 वा असण वा पाण वा त्याइम वा
 साइम वा वत्थ वा पटिग्गह वा
 पायपुद्दण वा ना पादेइजा नो
 निमत्तिइजा ना कुइजा वेयावडिय
 पर आढायमाणे ति वेमि ।

३१—सुव वेय जाणिइजा असण वा
 जाय पायपुद्दण वा लभिया नो
 लभिया भुंजिया णो भुंजिया पथ
 विउत्ता पित्तघवत्तम विभसं धम्म
 जोसेमाण समेमाणे चलेमाणे
 पाइइजा वा निमत्तिइजा वा कुइजा

३०—मैं कहता हूँ—मुनि समनोज्ञ अथवा असमनोज्ञ असयति को अशन, पान, खाद्य स्वाद्य वस्त्र प्रतिग्रह और पादपुच्छन न दे, न उनके लिए उसे निमन्त्रित करे और न परम आदर से उसको वैद्यावृत्त्य करे ।

३१—यह भी भ्रूव जाती—अशन पान खाद्य स्वाद्य वस्त्र प्रतिग्रह अथवा पादपौष मिला हो या न मिला हो भोगा हो या न भोगा हो पथ को छोड़ कर जाने से अन्य धर्म को मानने वाला असयति मुनि जाते समय

वेयावडिय पर अणाढायमाणे
सि वैमि (ध्रु० १ अ० ८ व० १)

३२—से समणुन्ने असमणुन्नास्स असण
वा पाण वा खाइम वा साइम वा
वत्थ वा कवल वा पडिग्गह वा
पायपुल्लण वा नो पाएज्जा नो निम-
तिज्जा नो कुज्जा वेयावडिय पर
आढायमाणे सि वैमि ।

३३—समणुन्ने समणुन्नास्स असणं वा
(४) कथ वा (४) पाएज्जा
णिमतेज्जा कुज्जा वेयावडिय पर
आढायमाणे सि

(ध्रु० १ अ० ८ व० २)

या आते समय कुछ दे या देने के लिए निमन्त्रित करे
अथवा देयावृत्त्य करे तो उसे स्वीकार न करे ।

३२—समनोश् मुनि असमनोश् को अशन, पान
साध्य स्वाद्य न दे न देने के लिए निमन्त्रित करे और
न परम आदर से उसकी देयावृत्त्य करे ।

३३—समनोश् मुनि समनोश् मुनि को अशन पान,
साध्य स्वाद्य वस्त्र पात्र प्रसिग्रह और पादपुञ्ज
देने के लिए निमन्त्रित करे और परम आदर भाव से
उसकी देयावृत्त्य करे ।

३४—से भिकवू परकमिञ्ज वा विट्टिञ्ज
 वा निसीञ्ज वा तुयट्टिञ्ज वा मुसाणसि
 वा सुन्नागारसि वा गिरिगुहसि वा रक्ख-
 मूलसि वा कुभारायणसि वा हुरत्या वा
 कहिचि विहरमाण त भिकपु उवसकमित्तु
 गाहावई वूया आवसतो समणा । अह खलु तव
 अट्टाए असण वा पाण वा खाइम वा साइम
 वा बत्थ वा पट्टिगाह वा कवल वा पाय-
 पुच्छण वा पाणाइ भूयाइ जीवाइ सत्ताइ
 समारब्भ समुदिस्स कीय पामिच्च अच्छिञ्ज
 अणिसट्टु अभिहट्ट आहट्टु चेणमि आवसह
 वा समुत्तिमणोमि से भुजह वसह ।
 आवसतो समणा । भिकवू त गाहावइ समणस

३४—श्मशान में शून्यागार में गिरिगुहा में वृक्ष के मूल में कुम्हार के आयतन में अथवा अन्य कहीं साधना करते हुए, बैठते विश्रान्ति लेते या विहरते हुए भिक्षु के समीप आकर कोई गाय्यापति कहे आयुष्मान् श्रमण । मैं आपके लिए प्राणी मूल, जीव और सत्त्वों का समारंभ कर अशन पान, साद्य स्वाद्य दस्य प्रतिग्रह कंबल अथवा पादपोछन बनाकर या आपके लिए खरीद कर अथवा उधार लाकर अथवा दूसरे से छीनकर अथवा दूसरे की अनुमति विना लेकर अथवा कहीं से लाकर आपको देता हूँ अथवा आपके लिए आवास चिनाता हूँ आप इन्हें भोगें और इसमें रहें तो है आयुष्मान् श्रमणो । वह भिक्षु उस समन सद्यस्क गाय्यापति से कहे

सवयस पडियाइक्खे आउसंतो । गाहावई
 नो एलु ते वयण आढामि नो खलु ते वयण
 परिजाणामि जो तुम मम अद्वाए असणं वा
 (४) वत्थ वा (४) पाणाइ वा (४)
 समारम्भ समुद्दिस्स कीय पामिच्च अच्छिज्ज
 अणिसट्ठ अभिदड आहट्टु चेएसि आयसहं
 वा समुस्सिणासि । से धिरओ आउसो
 गाहावई । एयरस अकरणयाए

३५—से भिक्खु परक्कमिज्ज वा जाव
 हुरत्था वा क्हिंचि विहरमाण त भिक्खुं
 उवसकमित्तु गाहानई आयगयाए पेहाए असण
 वा (४) वत्थ वा (४) जाव आहट्टु चेएइ
 आयसह वा समुस्सिणाइ भिक्खू परिपासेडं

आयुष्मान् गाथापति । तुमजो मेरे लिए अशन, पान साद्य, स्वाद्य वस्त्र प्रतिग्रह कंबल पादपोषण प्राणी भूत जीव और सत्त्वों का आरंभ कर करना चाहते हो अथवा खरोदकर अथवा उधार लाकर अथवा दूसरे से छीनकर अथवा दूसरे की अनुमति बिना लाकर अथवा कहीं से मेरे यहाँ लाकर मुझको देना चाहते हो अथवा आवास चिनाना चाहते हो तो मैं तुम्हारे इन वचन को आदर नहीं देता उन्हें स्वीकार नहीं करता । हे आयुष्मान् गाथापति । इन बातों को न करने के लिए ही तो मैं विरत हुआ हूँ ।

३५ - श्मशान में शून्य आगार में गिरिगुहा में वृक्ष के मूल में, कुम्हार के आश्रय में अथवा अन्य कहीं साधना करते हुए रहते बैठते, विप्राधि लेते या विहरते हुए भिक्षु को देखकर, आत्मा में विचारकर उसके भोजन या रहने के लिए प्राणी भूत जीवों और सत्त्वों का आरंभ

त च भिक्षु जाणिञ्जा मह सम्मइयाए
 परयागरणेण अन्नेसि वा मुधा अय सलु
 गाहावर्ह ममअट्टाए असर्ण वा (४) वत्थ वा
 आव वेएसि आवसह या समुस्मिणाइ त च
 भिक्षू पडिलेहाण आगमिस्ता आणविज्जा
 अणासेवणाण त्ति वेमि

३६—भिक्षु च सलु पुट्टा वा अपुट्टा वा
 जे इमे आहव गथा वा फुसति से हता हणह
 सणह छिदह दहह पयह आलुपह विलुपह
 सहसाकारेह विपरामुसह । ते फासे धीरो

विमोच

कर अशन पान साद्य, रण्य, लज्ज, शून्य, शून्य
 अथवा पादपोषण बनाने अथवा अशन पान, शून्य, शून्य
 अथवा उधार लाने, अथवा दुर्गम की शून्य, शून्य, शून्य
 की अनुमति बिना ऐसे अथवा अशन पान, शून्य, शून्य
 उसके लिए आवासा बिना—अथवा अशन पान, शून्य, शून्य
 भिक्षु को अपनी वृद्धि में दुर्गम की शून्य, शून्य, शून्य
 से चुनकर यह पान मायूम है कि अथवा अशन पान, शून्य, शून्य
 लिए वेसा कर रहा है ही अथवा अशन पान, शून्य, शून्य
 कर गृहस्थ को मना करे—अथवा अशन पान, शून्य, शून्य
 लिए अनैवणीय है—अथवा अशन पान, शून्य, शून्य

३६—कोई गादा... महा अर्थ व्यय कर... न करने पर क्रोधित है... इसे मारो, पीटो, करो...

—७५७७७७७७

मुद्रो अहियासए अदुवा आथारगोयरमाइषसे
 तक्किया णमणेलिस अदुवा वइगुत्तीए गोयरस्स
 अणुपुञ्जेण सम पडिलेइए आयत्तगुत्ते बुद्धेहिं
 एय पवेइय । (श्रु० १ अ० ८ उ २)

३०—त भिक्षु सीयफासपरिवेवमाणगाय
 उरसकमित्ता गाहावई वूया आउसतो
 समणा । नो खलु ते गामधम्मा उव्वाहति ?
 आउसंतो गाहावई । नो खलु मम
 गामधम्मा उव्वाहति, सीयफास च नो खलु
 अह सचाएमि अहियासित्तए । नो खलु मे
 कप्पइ अगणिकाय उज्जालित्तए वा पज्जालित्तए
 वा काय आयावित्तए वा पयावित्तए वा,
 अन्नेसिं वा वयणाओ

मार डाली अथवा अनेक तरह से तंग करे तो इस तरह संकट में पड़ा हुआ वर धीरे मुनि सब सहन करे अथवा सर्वपूर्वक अपना आचारगोचर बसलाने अथवा मौन रह आत्मगुप्त हो गोचरी की अनुक्रम से शुद्धि करता हुआ विचरे। ऐसा मुनि ने कहा है।

३७—उस भिक्षु का शरीर शीत से कपिता देल गाथापति कहे—हे आयुष्मान् अमगः कहीं आपको इन्द्रिय विषय तो पीड़ित नहीं कर रहे हैं तो मुनि कहे : आयुष्मान् गाथापति । निश्चय ही मुझे ग्राम विषय नहीं सताते । शीत के स्पर्श को मैं सहन नहीं कर सकता । मुझे अश्रिवाय जलाना या प्रज्वलित करना नहीं कल्पता । मैं आग भी नहीं ताप सकता । न अन्य को कहकर ऐसा करना कल्पता है ।

सिया स एव ध्यतस्म परो अगणिकाय
 उञ्जालिता पञ्जालिता काय आयाविञ्ज
 वा पयाविञ्ज या स च भिक्षु पडिलेहाए
 आगमिता आणविञ्जा अणामेवणाए
 ति वेमि

(श्रु० १ अ० ८ उ० ३)

३८—जरस ण भिक्षुस्स एव भयइ पुट्ठो
 अबलो अहमसि नालमहमसि गिहतरसंकमणं
 भिक्षुपरिय गमणाए से एव ध्यतस्म परो
 अभिहउ असण या (४) आहदु दुल्लइजा
 से पुञ्चामेव आलोइजा आउएतो ! णो

अन्य कोई पदार्थ

इसके लिए मैं जानूँ कि क्या है
यदि मैंने कभी नहीं किया है
तो मैंने कभी नहीं किया है
यदि मैंने कभी नहीं किया है

अनुपूर्वों से
) मरणों को
7) कितनी

इसके लिए मैं जानूँ कि क्या है
यदि मैंने कभी नहीं किया है
तो मैंने कभी नहीं किया है
यदि मैंने कभी नहीं किया है
यदि मैंने कभी नहीं किया है

खलु मे कप्पइ अभिहड असण वा (४)

भुत्तए वा पायए वा अन्ने वा एयप्पगारे

(ध्रु० १ अ० ८ उ० ६)

३६—अणुपुब्बेण विमोहाइ,

जाइ धीरा समासज्ज ।

वसुमतो मइमतो,

सब्बं नघा अणेत्थिस ॥

४०—दुविहपि विइत्ताण,

बुद्धा धम्मस्स पारगा ।

अणुपुब्बीइ सइस्साए,

आरभाओ तिउट्ठी ॥

सम्भूत लाया हुआ अशन आदि अथवा अन्य कोई पदार्थ ग्रहण करना या स्नान पीना नहीं कह्यता ।

३९—संयमी प्राज्ञ और धीर पुरुष अनुपूर्वा से (साधना करता हुआ) सभी अनुपम धार्मिक मरणों को ज्ञान, मोह रहित मरणों में से (शक्ति अनुसार) किसी एक को अपना (समाधिमरण करे) ।

४०—धन के पारगामी बुद्ध पुरुष पंडित और अपंडित द्विविध मरणों को समझ, यथा क्रम से समय का पालन करते हुए मृत्यु के समय को ज्ञान आरम्भों से निवृत्त होते हैं ।

४१—कसाए पयणू किञ्जा,
 अप्पाहारे तितिक्खए ।
 अह भिक्खू गिलाइञ्जा,
 आहारस्सेव अन्तिय ॥

४२—जीविय नाभिकइखेञ्जा,
 मरण नोवि पत्थए ।
 दुहओऽवि न सञ्जिञ्जा,
 जीविए मरणे तहा ॥

४३—मज्जत्थो निज्जरापेही,
 समाहिमणुपालए ।
 अतो याहिं विऊरिसिञ्ज,
 अज्जत्थ सुद्धमेसए ॥

४१—वह कषायों को प्रतनु—धीन कर अन्वाहार करता हुआ रहे तथा तितिक्षा भाव रहे। जब मित्रु ग्लान हो तो वह आहार के समोप न जाय—उत्तका सर्वथा त्याग कर दे।

४२—वह जीने की आकांक्षा न करे और न मरने की ही प्रार्थना—कामना—करे। वह जीवन् और मूर्त्यु दोनों में ही आसक्त न हो।

४३—वह समभाव में स्थित हो, निर्जला की अपेक्षा रखता हुआ समाधि का पालन करे। अम्यन्तर और बाह्य ममत्व का त्याग कर वह विशुद्ध अध्यात्म का अन्वेषण करे।

४४—ज रिचुवक्कम जाणे,
 आऊ खेमस्तमप्पणो ।
 तस्सेव अन्तरद्दाण,
 विप्प सिक्खिणञ्ज पण्डिण ॥

४५—गामे वा अदुवा रण्णे,
 थडिल पडिलेहिया ।
 अप्पपाण तु विन्नाय,
 तणाइ सधरे मुणी ॥

४६—अणाहारो तुयट्टिञ्जा,
 पुट्ठो तत्थऽहियासप ।
 नाइवेरु सवधरे,
 माणुस्सेहि विपुट्ठव ॥

४४—यदि उसे अपने आयु क्षेम में किंचित् भी विग्र
 मालूम दे तो उसके अन्तर काल में पण्डित साधक शीघ्र
 ही भक्त परिज्ञा आदि को ग्रहण करे ।

४५ ४६—ग्राम अथवा अरण्य में प्राणिक मुनि का
 प्रतिलेखन कर प्राणि रहित जगह जान मुनि दा विष्णवे ।
 आहार का त्याग कर तृणों पर शयन करे, ह्यं दर्श
 से स्पृष्ट होने पर उन्हें सहन करे और मानुषिक कर्मा
 से स्पृष्ट होने पर मर्यादा का उल्लंघन न करे ।

४७—ससप्पगा य जे पाणा,
 जे य उड्डमहाचरा ।
 भुञ्जति मससोणिय,
 न छणे न पमञ्जए ॥

४८—पाणा देहं विहिंसंति,
 ठाणाओ नवि उड्डमे ।
 आसवेहि विवित्तेहि,
 तिप्पमाणोऽहियासए ॥

४९—गन्धेहि विवित्तेहि,
 आउफालस्स पारए ।
 पग्गहियत्तरग वेय,
 ष्वियस्स वियाणओ ॥

४७—सरीसृप ऊर्ध्वचर अथवा अधचर प्राणी मांस को नोचे अथवा शोणित का पान करें तो उनको न मारे और न उन्हें दूर करें।

४८—जीव जन्तु देह को हिंसा करते हों तब भी मुनि उस स्थान से अन्यत्र न जावे। हिंसा आदि आश्रयों से दूर रहकर तुट हृदय से कष्टों को सहन करे।

४९—वाह्य और अन्त्यन्तर प्रथियों से दूर रह कर समाधिपूर्वक आयुष्य को पूरा करे। गौतम संन्यसो के लिए यह दूसरा इंगित मरण विशेष ब्राह्म है।

५०—अय से अवरे घम्मे,
 नायपुत्तेण^१ साहिण ।
 आयवज्ज पहीयार,
 विज्जहिज्जा विहा विहा ॥

५१—हरिणमु न निचज्जिज्जा,
 थण्डिल मुणिया सए ।
 विओसिज्ज अणाहारो,
 पुट्ठो तत्थऽहियासए ॥

५२—इन्दिपहिं गिलायतो,
 समिय आहरे मुणी ।
 सहावि से अगरिहे,
 अचले जे समाहिप ॥

५०—ज्ञातपुत्र के द्वारा अच्छी तरह कहा गया दूसरा इंगित मरण धर्म है इसमें खुद को छोड़ अन्य से प्रतिचार—सेवा—कराने का त्रियोग से त्याग करे ।

५१—मुनि हरित—दूर्वादियुक्त भूमि—आदि पर ७ सोवे । भूमि को प्रासुक जानकर सोवे । शरीर को व्युत्सर्ग कर अनशन करे । वहां उपसर्गों से स्पुट होने पर सहन करे ।

५२—(निराहार के कारण) इन्द्रियों के रतान होने पर मुनि चित्त के स्थैर्य को रखे । इंगित मरण में अपने स्थान में हलन चलन आदि करता हुआ वह निन्द्य नहीं होता यदि वह भावना में अचल और समाहित होता है ।

१३—अभिव्यमे पट्टिषमे,
 सङ्कुचए पमारण ।
 कायसाहारणद्वारण,
 इत्यथावि अचेयणो ॥

१४—परिषमे परिक्विलते,
 अदुवा चिट्ठे अहायण ।
 ठाणे ण परिक्विलते,
 निसीइज्जा य अतसो ॥

१५—आमीणेऽणेलिस मरण,
 इन्दियाणि समीरण ।
 कोलावास सभासज्ज,
 वित्ठ पाउरे सए ॥

५३—इंगित मरण में मुनि काया को सहारा देने के लिए चक्रमण करें टहले अगोपागों को सवुचित करे प्रसारित करे अथवा इसमें भी अचेतन जडवत् निधल रहे ।

५४—परिक्रान्त होने पर वह टहले अथवा यथावत् सड़ा रहे । यदि सड़ा रहने से परिक्रान्त हो तो वह अन्त में पुन वैठे ।

५५—अनुपम मरण में आसीन मुनि इन्द्रियों को विषयों से हटावे घुन वाले पाटे के प्राध होने पर अन्य जीव रहित पाटे की गवैपणा करें ।

१६—जओ वज्रं समुप्पज्जे,
 न तत्थ अवलम्बए ।
 तउ उक्कसे अप्पाणं,
 फासे तत्थऽहियासए ॥

१७—अय चाययतरे सिया,
 जो एवमणुपालाण ।
 सव्वगायनिरोहेऽधि,
 ठाणाओ नदि उब्भमे ॥

१८—अय से उत्तमे धम्मे,
 पुब्बट्टाणरस पग्गहे ।
 अचिर पडिलेहिप्ता,
 विहरे चिट्ठ माहणे ॥

५६—जिससे पाप की उत्पत्ति हो उसका अवलम्बन न करे। पाप कार्यों से बच अपनी आत्मा का उत्कर्ष करे। परिपहों से स्पृष्ट होने पर उन्हें सहन करे।

५७—अब आगे कहा जानेवाला पादोपगमन मरण इंगित मरण से भी बढ़कर है। जो इसका पालन करता है वह सारे अज्ञों के जकड़ जाने पर भी अपने स्थान से किंचित् मात्र भी नहीं हटता।

५८—यह आत्मधर्म पादोपगमन मरण पूर्व कथित मरणों से भी विशेष रूप से ग्राह्य है। प्रासुक भूमि को देख माहन—भुनि, वहीं रह पादोपगमन मरण का पालन करे।

१६—जओ वज्ज ममुप्पज्जे,
 न तथ अवलम्बए ।
 तउ उक्कसे अप्पाणं,
 फासे तथऽदियासए ॥

१७—अय चाययतरे मिया,
 ओ ण्यमणुपालाण ।
 सव्वगायनिरोहेऽधि,
 ठाणाओ नवि उम्भमे ॥

१८—अय से उत्तमे धम्मो,
 पुञ्चट्टाणम्म पग्गहे ।
 अचिरं पढिलेट्ठिता,
 विहरे चिट्ठ माहणं ॥

५६—जिससे पाप की उत्पत्ति हो उसका अवलम्बन न करे। पाप कार्यों से बच अपनी आत्मा का उत्कर्ष करे। परिपहो से स्पृष्ट होने पर उन्हें सहन करे।

५७—अब आगे कहा जानेवाला पादोपगमन मरण इंगित मरण से भी बढ़कर है। जो इसका पालन करता है वह सारे अज्ञों के जकड़ जाने पर भी अपने स्थान से किंचित् मात्र भी नहीं हटता।

५८—यह आत्मधर्म पादोपगमन मरण पूर्व-वर्ति मरणों से भी विशेष रूप से ब्राह्म है। ब्रह्मूक मूनि को देख माहन—मुनि यहाँ यह पादोपगमन मरण का पालन करे।

५६—अचित्त तु समासज्ज,
 ठावए तत्थ अप्पग ।
 वोसिरे सब्बसो काय,
 न मे देहे परीसहा ॥

६०—यावज्जीव परीसहा,
 इवसग्गा इति सइस्खया ।
 संघुडे देह भेयाण,
 इय पन्नेऽहियासए ॥

६१—भेउरेसु न रज्जिजा,
 कामेसु बहुतरेसुनि ।
 इच्छा लोभ न सेविजा,
 धुववन्न सपेहिया ॥

५९—अचित स्थान को प्राप्तकर वहाँ अपने आपको स्थित करे। काया को सर्वश व्युत्सर्ग करे और परिपहों के आगे पर सोचे मेरे शरीर में परीपह नहीं है।

६०—जब तक यह जीवन है तब तक ये परीपह और उपसर्ग हैं ऐसा जानकर देह-भेद के लिए स्वतः प्रज्ञा उनको समभाव से सहन करे।

६१—वह नश्वर विपुल कामभोगों में रंजित न हो। भ्रुव दर्श—मोक्ष—की ओर दृष्टि रख, वह इच्छा और लोभ का सेवन न करे।

६२—सासएहि निमन्तिजा,
 दिव्वमाय न सदहे ।
 न पडिवुञ्ज माहणे
 सव्व नूम विहूणिया ॥

६३—सव्वदडेहि अमुच्छिण्ण,
 आवकालस्स पारए ।
 तित्तिण्ण परम नणा,
 विमोहन्नयर हिय ॥
 त्तिबेमि ॥

६२—वीई जीवनपर्यन्त नही नाश होनेवाले शाश्वत ऐश्वर्य के लिए निर्मात्रित करे, तो भी मुनि उस देव माया में विश्वास न करे। हे माहन। उसको अच्छी तरह समझ सब प्रपंच का त्याग कर।

६३—सर्व इन्द्रिय विषयों में मूर्छित न होता हुआ वह आयुष्य को पूर्ण करे। तितिक्षा को परम धर्म समझ मोह रहित नरुणों में से किसी एक को धारण करना अत्यन्त हितकर है। ऐसा मैं कहता हूँ।

